सुकीर्ति

साहित्य, समाज मानविकी विमर्श

(शोध-निबंध)

सम्पादक
प्रो. डॉ. सविता भारद्वाज
डॉ. निरंजन कुमार यादव

Scanned with OKEN Scanner

सुकीर्ति

साहित्य, समाज एवं मानविकी विमर्श

(शोध-निबंध)

सम्पादक

प्रो. डॉ. सविता भारद्वाज

डॉ. निरंजन कुमार यादव

कोशल पब्लिकेशंस

दिल्ली, भोपाल, अयोध्या

Scanned with OKEN Scanner

सुकीर्ति साहित्य, समाज एवं मानविकी विमर्श

ISBN : 978-93-91016-69-2

© : सम्पादक

प्रथम संस्करण : 2022

मूल्य : ₹ 650/-

प्रकाशक : कोशल पब्लिकेशंस
176 तिलक नगर
अयोध्या-224001 उ.प्र.
मोबाइल : 9838156834, 6307550933

Email : koshalpublications@gmail.com

आवरण सज्जा : शशिकांत सिंह

मुद्रक : राधा ऑफसेट, दिल्ली

शब्द-संयोजन : आशीष प्रिंटर्स

Sukriti Sahitya, Samaj Avm Manviki Vimarsh (Shodh-Nibandh)
By Pror. (Dr.) Savita Bhardwaj, Dr. Niranjan Kumar Yadav

Rs. ₹ 650.00

Scanned with OKEN Scanner

13. आधुनिक भारत में महिला शिक्षा की अग्रदूत सावित्रीबाई फुले
डॉ. सारिका सिंह 1

14. वेदों में पर्यावरण चिन्तन
डॉ. अनीता कुमारी

15. आदिकाल से लेकर समकालीन साहित्य के आइने में चित्रकूट
डॉ. संगीता मौर्य

16. मनुष्यता के प्राकृतिक परिवेश की कहानी : तीसरी कसम 118
डॉ. निरंजन कुमार यादव

17. प्रेमचन्द साहित्य में दलित चेतना विशेष संदर्भ–गोदान 125
डॉ. सुषमा पुरवार

18. सामाजिक समन्वय की औपन्यासिक समाराधना 128
डॉ. शशिकला जायसवाल

19. गोदान और यथार्थवाद 134
अनिरूद्ध गोयल

20. 'संग्राम' नाटकः एक आलोचनात्मक अध्ययन 140
डॉ. आशा वर्मा

21. जनचेतना के संवाहक : प्रेमचंद 149
डॉ. प्रतिभा प्रसाद

22. प्रेमचन्द का साहित्यः सामाजिक सरोकार और मानव अस्तित्व 155
डॉ. नलिनी सिंह

23. संत गोरखनाथ की रहस्यवादी चिन्तन-दृष्टि और उनमें सन्निहित जीवन-मूल्यों का सामाजिक महत्व 159
प्रो. आशा यादव

24. भारतीय दार्शनिक परम्परा के आलोक में बाबा गोरखनाथ 163
माधव कृष्ण

25. वर्तमान मानव-जीवन में गोरख-दर्शन की प्रासंगिकता 175
प्रो. वेकरिया गोविंद टी.

26. गोरक्षनाथ की साधना-पद्धति : हठयोग 179
जोश विभा प्रफुल्ल भाई

Scanned with OKEN Scanner

संत गोरखनाथ की रहस्यवादी चिन्तन-दृष्टि और उनमें सन्निहित जीवन-मूल्यों का सामाजिक महत्त्व

प्रो. आशा यादव
वसंत कन्या महाविद्यालय, वाराणसी

हिन्दी साहित्य में नाथसंप्रदाय और गोरखनाथ पर अध्ययन-अध्यापन के तहत यह बराबर अनुभव किया जाता रहा है कि नाथसम्प्रदाय और इसका साहित्य तथा गोरखनाथ निश्चित रूप से भारतीय-संस्कृति और समाज के एक अनिवार्य एवं अभिन्न अंग हैं। संतशिरोमणि गोरखनाथ को प्रसिद्ध आलोचक और इतिहास लेखक पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी शंकराचार्य के पश्चात् दूसरे सर्वाधिक महिमाशाली व्यक्तित्व-सम्पन्न महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में तांत्रिक-बौद्ध-सिद्ध-साहित्य और सम्प्रदाय के साथ नाथ-सिद्ध-साहित्य और सम्प्रदाय के संबंध स्थापन में भी न्याय नहीं किया गया। इसी प्रकार नाथ-सिद्धों के साधन और सिद्धांतों के स्रोत तथा स्वरूप पर भी अनेक विवाद हैं।

हिन्दी में ऐसी प्रभूत रचनाएँ हैं जिनका मूल्यांकन शुद्ध काव्य के निकष पर नहीं किया जाना चाहिए। ऐसे रचनाकारों ने ऐहिक उपलब्धियों एवं गुणों को नकार दिया था और साथ ही कविता को अहंकार की जननी मानकर रचना और जीवन दोनों क्षेत्रों से बहिष्कृत कर दिया था। अतः रहस्यवादी काव्य-दृष्टि मात्र ही ऐसी कसौटी है जिसपर उनके खरी खोटी होने का विचार किया जा सकता है। ऐसी कविता में प्रेषणीयता ही प्रथम गुण है और साधनात्मक अनुभूतियों एवं विचारों की जीवनगत सत्यता, सघनता और पुष्टता दूसरा। भारतीय जनजीवन से इनका संबंध शुद्ध काव्य की अपेक्षा अधिक सघन था और प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक व्यापक। एक शुद्ध काव्य की दृष्टि से गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं का मूल्यांकन उत्साहप्रद नहीं हो सकता। सभी प्रकार की पद्यात्मक रचनाओं का मूल्यांकन एक ही मानदंड से करना अन्यायपूर्ण और असंगत दोनों है।

इसलिये गोरखनाथ की रचनाओं की परीक्षा रहस्यवादी काव्य दृष्टि से की जानी चाहिए। गोरखनाथ की रचना योगयुक्त ज्ञान को स्वीकार कर चलती है। रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा के एकात्म का जीवन दर्शन है जो सभी भूतों अथवा जीवों में एक अव्यय-तत्व को देखता है, विभक्त में उसी एक अविभक्त को देखता और अनुभव करता है। रहस्यवादी भी सभी आध्यात्मिक और वैश्विक स्तरों पर एकत्व में विश्वास करता है। वह अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष से उपलब्ध सर्वातीत आध्यात्मिक आनंद की सर्वोच्चता में विश्वास करता है और आनंद मय एकात्म अनुभूति का संपूर्ण जीवन में अवतरण आवश्यक मानता है। भारतीय रहस्यवाद में मायावाद और अद्वैतवाद को अनेक रूपों में स्वीकार किया गया है। साथ ही इसमें पाँच विशेषताएँ सामान्यतः दिखाई पड़ती हैं–1. मानव की शुद्धता के प्रति तीव्र सावधानी, 2. संतुष्टि, 3. नैतिक सात्विकता के प्रति सजग जागरूकता, 4. आत्मोत्सर्ग, 5. ऐकांतिकता। इसके अंतर्गत डॉ. दासगुप्त ने ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति नामक सभी चारों साधनोपायों को अंतर्भूत कर लिया है। दूसरी बात रहस्यवाद के भारतीय विवेचकों ने

Scanned with OKEN Scanner

गोरखनाथ को रहस्यवादी माना है। गोरखनाथ का काश्मीर शैवमत से संबंध था ही, महमहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज ने पहले ही इसकी घोषणा कर दी थी। डॉ. मोहन सिंह ने गोरखनाथ को हिन्दू रहस्यवाद तथा मध्ययुगीन भाषासाहित्य का सर्वप्रथम ऐतिहासिक रहस्यवादी माना था।[3] उन्होंने अपने रहस्यवाद में योग को महत्त्व दिया।

डॉ. आर.डी.रानाडे ने भी गोरखनाथ को रहस्यवादी माना।[4] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि गोरखनाथ का रहस्यवाद योगपरक रहस्यवाद है जिसका मूल हमें काश्मीर शैवदर्शन में दिखाई पड़ता है। गोरख-नाथ के रहस्यवाद में हमें निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती हैं– 1. नैतिकता और संयम के प्रति दृढ़ आग्रह, 2. हठयोग साधन की प्रथमिकता, 3. ज्ञानोपलब्धि लक्ष्य, 4. तर्क, पाण्डित्य और शास्त्रकथन के विरोध के साथ 'रहनी' पर आग्रह, 5. ऐन्द्रिक सुख का तीव्र विरोध, 6. अद्वैतानन्द की उपलब्धि, 7. माया से औदासिन्य, 8. पिण्ड ब्रह्माण्ड के एकात्म का सम्पादन आदि।[5] अर्थात् गोरखनाथ एकात्म में विश्वास करते हैं। उनकी रचनाओं में पिंडब्रह्मांड एकत्व, आत्म-परमात्मएकत्व, अनेकता में एकता, जीवात्म शक्ति और ब्रह्मांडशक्ति या महाशक्ति में एकत्व, पिण्डशक्ति कुण्डलिनी और ब्ह्माण्ड शक्ति महाकुण्डलिनी में एकत्व, नाद अनाहद नाद और मूल नाद प्रणव में एकत्व आदि इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। मनुष्य की मूल शक्तियों की परावृत्ति-परावर्तन (अथवा रिवर्सल) को महत्त्व देते हैं। मन-पवन नाम की शक्तियों के अतिरिक्त कामशक्ति (शुक्र) के नियंत्रण की महत्ता स्वीकार करते हैं। वस्तुतः वे कामशक्ति के 'मरण' और 'जारण' में विश्वास करते हैं। वे तर्क के स्थान पर अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष को स्वीकार करते हैं। उनका जो 'प्रत्यक्ष 'है, उसमें भी बुद्धि, विवेक, चिंतन और मनन की प्रधानता है। मूलतः गोरखनाथ विवेकवादी रहस्यवादी हैं।[6] गोरखनाथ के रहस्यवाद के इस परिचय के आधार पर उनकी हिन्दी की परीक्षा रहस्यवादी काव्यदृष्टि से की जा सकेगी। रहस्यवादी प्रतीक और पौराणिक शैली (माइथोलॉजी) का प्रयोग अपनी अभिव्यक्ति के लिये करता है। यही रहस्यवादी की भाषा है। रहस्यवादी काव्य में हृदय के धर्म को उक्त दोनों पद्धतियों से मोहक आवरण प्रदान किया जाता है। रहस्यवाद के अनुसार रहस्यानुभूति ''गूँगे का गुड़'' है। असीम का असीम साधन से निर्वचन करने के लिये संकेत ही एकमात्र सहायक हो सकता है। इसप्रकार इसमें धार्मिक प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग होता है। इसके बाद लोकपरंपरा और अंततः सबसे कम काव्यपरंपरा से गृहीत प्रतीकों का स्थान है।

यदि गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं में उक्त दोनों पद्धतियों का विचार करें तो उनमें पौराणिक कथायोजना का अभाव दिखाई पड़ता है। योग संबंधी प्रतीकों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। उन्होंने लोकजीवन से भी कुछ प्रतीकों को चुना है; किंतु काव्यपरंपरा से गृहीत प्रतीकों का सवर्था अभाव दिखाई पड़ता है। उनके कुछ प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण प्रतीक निम्नलिखित हैं–

गुदड़ी=काया (सबदी 40), अहुठ पटण=काया (43), हीरा=परमतत्त्व (60), पंचदेव=मन (112), गाय=परमानुभूति (196), कागद= उपनिषद (196), कामधेनु=परमानुभूति और आध्यात्मिक अनुभूति (207)

स्पष्ट है कि ये सभी प्रतीक लोकजीवन से ग्रहण किये गये हैं। इनमें से कुछ, जैसे कामधेनु का चयन पौराणिक स्रोत से किया गया है। इन प्रतीकों से पर्याप्त विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है लेकिन विस्तार के भय से ऐसा संभव नहीं हो पा रहा। बाद के इस विषय से जुड़े किसी शोध-प्रपत्र में यथावसर इसको विस्तार दिया जाएगा। इनके अर्थ आध्यात्मिक एवं योगपरक हैं। इनका संबंध विभिन्न योगक्रियाओं

Scanned with OKEN Scanner

एवं फलों से है। उपर्युक्त प्रतीकार्थों में मतभेद भी हो सकता है; क्योंकि उलटबांसियों से चयनित प्रतीकों के अर्थ पर इदमित्थं नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक पौराणिक कथायोजना का प्रश्न है, गोरखनाथ ने स्वयं पौराणिक-सिद्धांतों, विचार-सरणियों एवं विश्वासों का विरोध किया है; किंतु औपम्यविधान के क्रम में कहीं कहीं आंशिक रूप में उनका उपयोग अवश्य किया है। माया ने अनेक रूपों में ब्रह्मा, विष्णु, महादेव को किस प्रकार छला, इसकी कथा कहने की आवश्यकता गोरखनाथ ने नहीं समझी, केवल संकेत कर दिया 14. इसी प्रकार के कुछ और संकेत भी ढूँढे जा सकते हैं।

आज भी सामान्य जनता इन आध्यात्मिक प्रतीकों से प्रेरणा ग्रहण करती है और ''उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धांत को जीवन में तथा आचरण में उतारती है। भारतीय नैतिकता और आचार का सजीव रूप इन रचनाओं में मिलता है। आचरण के बिना शास्त्र, रहस्यवाद, नीति, सिद्धांतप्रवचन, व्याख्यान, निर्देश-उपदेश सब थोथे हैं। समानता की भावना और समदृष्टि का विकास कर सामाजिक और साम्प्रदायिक वैषम्य के उन्मूलन की आवश्यकता आज कम नहीं है। इसलिये भारतीय जन जीवन ही नहीं सम्पूर्ण वैश्विक मानव समाज को आज गोरखनाथ जैसे महापुरुषों एवं उनके चारित्रिक आदर्शों की अधिक आवश्यकता है।

हिन्दी के आदिकालीन समाज में स्वेच्छाचार, अमर्यादित जीवन, अतिवादिता, सिद्धांतों और तथाकथित उच्च साधनाओं की आड़ में भोग को योग घोषित करने की प्रवृत्ति, अनधिकारियों के प्रवेश, भोगविलास की अति, आडंबर, अनावश्यक संग्रह आदि विभिन्न प्रवृत्तियों का प्राबल्य था। कृच्छ्राचार, सहज भोग को योग का जामा पहनाया जा रहा था। योग के प्रति धारणा गिरती जा रही थी। आडंबर और अंधविश्वास बढ़ रहा था। अतः वज्रसाधकों और सहजयिनियों की अपार भीड़ के बीच में संयत और अनुशासित जीवन का मार्ग गोरखनाथ ने ढूँढ निकाला जिससे शुद्ध शरीर, शुद्धाचार, सात्विक व कर्मठ एवं अनुशासित जीवन का यथार्थ रूप सामने आया। कहीं घोर अतिवादी भौतिकता के अँधड़ में मानव का चारित्रिक मेरुदंड टूट न जाय, समग्र भारतीय समाज का ओज प्रवाही स्नायुजाल छिन्न-भिन्न न हो जाय और अर्धपिशाच मानव का चर्वण न कर ले।

जीवन्मुक्ति के सिद्धांत का अनुगामी और सम्पूर्ण जीवन-शक्ति-धारा को उसकी ओर प्रवाहित करने का हामी– जीवन और जगत् दोनों से निवृत्त होने की बात तक नहीं कर सकता। यहाँ गोरखनाथ की ही बात हो रही है। यदि इस महिमामय व्यक्तित्व के परवर्ती प्रभाव की समीक्षा की जाय तो हिन्दी का संत-साहित्य ही नहीं, सूफी साहित्य भी, भारत का चतुर्दिक साधनात्मक जीवन ही नहीं, परवर्ती विश्वव्यापक बौद्ध-साहित्य और जीवन भी किसी न किसी रूप में अवश्य इनसे प्रेरणा ग्रहण करता रहा है। यदि इस शैवसिद्धाचार्य का इतना महिमामंडित जीवन और व्यक्तित्व न होता तो परवर्ती तिब्बती बौद्ध शास्त्र और साहित्य इसके गुणकथन में न रमते और न अपनी परंपरा में इसकी महिमा की घोषणा ही करते।

सम्पूर्ण भारत में ही नहीं, उससे बाहर भी सम्प्रदाय एवं पंथ के अनेक रूप और संस्थाएँ अभी भी साक्षी रूप में विद्यमान हैं।

संदर्भ सूची

1. गोरखनाथ, नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, पुरोवाक् पृ. 70, डॉ. नागेंद्र नाथ उपाध्याय, प्रथम संस्करण 2005 ई.
2. नाथ और संत साहित्यः तुलनात्मक अध्ययन, पृ.554-555, 556; हिन्दू मिस्टिसिज्म, डॉ. सुरेंद्र नाथ दासगुप्त, प्रीफेस, पृ. 7-11
3. नाथ और संत साहित्य पृ. 561.
4. Pathway to God, R.D.Ranaday

Scanned with OKEN Scanner

5. विस्तार के लिये दृष्टव्य–'नाथ ओर संत साहित्य', पृ.565-570
6. विस्तार के लिये दृष्टव्य–नाथ और संत साहित्य, पृ. 580
7. गोरखबानी, सबदी–40
8. गोरखबानी, सबदी–43
9. गोरखबानी, सबदी–60
10. गोरखबानी, सबदी–112
11. गोरखबानी, सबदी–196
12. गोरखबानी, सबदी–196
13. गोरखबानी, सबदी–207
14. गोरखबानी पृ.35, सबदी 101

Scanned with OKEN Scanner

जीवन के रंग अनेक

डॉ.आशा यादव

Scanned with OKEN Scanner

जीवन के रंग अनेक

आशा यादव

असोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

वसन्त कन्या पी जी कॉलेज कमच्छा

बी.एच.यू.वाराणसी।

पी. आर. सी. पब्लिकेशन

Scanned with OKEN Scanner

प्रथम संस्करण : २०२०
ISBN 978-93-87048-16-4

© प्रकाशक

Email prcbsbi@gmail.com

Website www.philosophical researchcouncil.com

मूल्य -₹ ३५०

प्रकाशक : मुद्रक

पी. आर. सी. पब्लिकेशन

लखनपुर भुल्लनपुर
वाराणसी २२११०८

Scanned with OKEN Scanner

अनुक्रम

	पूर्वपीठिका	९
१	प्रखर ज्योति अग्नि तत्त्व और अध्यात्म की	१५
२	बुद्धोपदेश की उपादेयता	१७
३	अनकहा सच स्त्री के तलघर का	२०
४	'तुम'और 'मैं'	२४
५	संजीवनी अन्तस् ऊर्जा की	२७
६	झंकृति मधुर हृत्तन्त्री की	२९
७	बदहाली देश के कामगारों की	३१
८	उत्तराखंड वादी में कुप्पु-फूल-प्रस्फुटन	३४
९	आज घूम गया है	३६
१०	अनुगूँजन सियापे के अन्तर्ध्वनि की	४४
११	दो जून की रोटी	४७
१२	लद्दाख के गलबन में शहीद भारतीय सेना के कर्नल संतोष बाबू और उनके २० जाबाँज जवानों को हार्दिक श्रद्धांजलि	४९
१३	भाग्य विधाता कौन !!!!	५२
१४	करना संभव असंभव को	५७
१५	प्रायश्चित एक बेटे का	६०

Scanned with OKEN Scanner

१६	प्यारे बेटे शाश्वत को जन्मदिवस की अनन्त शुभेषणा	६५
१७	श्री सी पी एन सिंह भैया और हम सबकी प्यारी मोती भाभी के वैवाहिक-बन्धन के ५० वर्षों की संपूर्ति पर काव्यमयी स्वर्णिम-शुभकामना-शब्दप्रसून	६८
१८	हिन्दी है तो हम हैं	७१
१९	संरक्षणगृह बनाम यातनागृह	७२
२०	स्मृतियों के वातायन से	७४
२१	"आस्था के पल" काव्य-संग्रह की काव्यात्मक- समीक्षा	७८
२२	ये घर हमसब का कुछ लगता है	८०
२३	आने से तुम्हारे बदले हैं	८४
२४	इस साल कुछ अलग दीवाली	८५
२५	माँ बहुत याद क्यूँ आती हो	८६
२६	होता है बहुत ही मुश्किल	८८
२७	मेरे बाबूजी	९२

Scanned with OKEN Scanner

कवयित्री के विषय में

डॉ. आशा यादव एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वसन्त कन्या पी.जी. कॉलेज,कमच्छा, वाराणसी
जन्म : 13 अप्रैल, सन् 1964, वाराणसी
शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी(1986),
पी.एच.डी.काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी(1992)
अध्यापन–अनुभव : 1987 से अद्यतन

प्रकाशन

प्रकाशित पुस्तकें:

1. जीवन बिन्दु(काव्य–संग्रह)
2. भारतीय स्त्री : दशा और दिशा
3. कबीर चिन्तन के विविध आयाम
4. कोरोना की पीर

सम्पादन

1. महिला पंचायत(राष्ट्रीय हिन्दी मासिक पत्रिका)
2. सर्जना(काव्य–संग्रह)हस्तलिखित पत्रिका
3. प्रसाद महादेवी:संदर्भ और दृष्टि
4. पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि एवं सृष्टि
5. संसिद्धि:महामनीषी प्रो.सिद्धेश्वर भट्टाचार्य एवं शास्त्र परम्परा
6. रामचरित मानस में अभिव्यक्त लोक संस्कृति (प्रकाशनाधीन)
7. परख (प्रकाशनाधीन)

साक्षात्कार

1. प्रोफेसर चौथीराम यादव: प्रतिरोधी परम्परा के आलोचक,पसमांदा विमर्श के जनक,स्त्री व दलित विमर्श के शलाका पुरुष के साथ डॉ० आशा यादव की वार्ता।
2. विदुषी, लेखिका, कवयित्री डॉ०कमला पाण्डेय जी के साथ डॉ० आशा यादव की वार्ता

पुस्तक समीक्षा

1. रक्षत गंगाम् महाकाव्य.डॉक्टर कमला पाण्डेय
2. आस्था के पल काव्य संग्रह.डॉक्टर अवधेश मिश्रा

रेखाचित्र लेखन

1. झूरी : अनन्त पथ की ओर
2. मेरी स्मृतियों में प्रो०वासुदेव सिंह
3. प्रो०चौथीराम यादव : जैसा मैंनें जाना

पदक व सम्मान.

1.भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा लेखन हेतु पदक प्राप्त।
2.अखिल भारतीय गोकुल आर्ट्स नाट्य संस्थान द्वारा पुरस्कृत
3.शिक्षा रत्न अवार्ड (IIFS द्वारा प्रस्तावित)
4.भारत ज्योति अवार्ड(IIFS द्वारा प्रस्तावित
5. महिला विदुषी सम्मान–नव सृजन दृष्टि महिला मंच द्वारा प्रदत्त
6.काशी धाम हमारी विरासत द्वारा विशिष्ट साहित्यिक सम्मान से सम्मानित

भूमिका लेखन–

1.तीरगी की खाट पर (कविता संग्रह) .–प्रणव मिश्र तेजस

सम्पर्क : B 20/44 A D3 Fourth Floor ,Vijaya Complex, Bhelupur,Varanasi—221010

Scanned with OKEN Scanner

पूर्वपीठिका

परिवर्तन सृष्टि का नैसर्गिक गुण है।यह सृष्टि कभी भी एकरस नहीं रह सकती।इसमें होने वाले बदलावों--मसलन ऋतुओं का परिवर्तन रात-दिन, धूप-छाँह की अदल-बदल यही प्रकट करते हैं कि संसार की शोभा इसकी परिवर्तनीयता में ही निहित है।हर परिवर्तन एक नवीन ज़िंदगी की अधुनातन आशा लेकर उपस्थित होता है।ग्रीष्म के आतप से तप्त और व्याकुल मानवों के भयंकर ताप को हरने के लिए वर्षा का आना, इन मनुष्यों के लिए नवजीवन और नूतन सुख का संसार सृजित करने के सुन्दर अहसास जैसा है।वर्षा में अपार जल-भराव से उफनती नदियों के प्रबल-प्रवाह-वेग से आवागमन के सभी रास्तों का अवरुद्ध हो जाना,उनके पानी का गंदला जाना,कीड़े-मकोड़ों की भरमार हो जाना और फिर बड़े हौले से इन सबके निवारण के लिये प्रकृति में शरद ऋतु का प्रवेश कर जाना- ये सभी यथोचित परिवर्तन उस समय वर्षा की विभीषिका से त्रस्त और ऊबे हुए जनमानस को एक बार पुनः आह्लाद से भर उनमें नवजीवन का संचार कर देता है।इसी प्रकार जानलेवा तीर की चुभन सी शीतलहर और सर्द-मौसम की मार झेलने के पश्चात् पुनः शीत रहित सुखद ऋतुराज वसंत का आना फिर से संसृति के समूचे जनमानस को मानो सुख-चैन,सौंदर्य-सुरभि और मकरंद के आनंद की रसमाधुरी से सराबोर कर देता है।

यह सब देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे कहीं एक सी स्थिति में रहते हुए संसार के सभी प्राणी ऊबकर संसार से ही विरक्त न होने लग जाँय संभवतः इसीलिये परमात्मा ने इस संसृति में परिवर्तन का एक अनिवार्य और अपरिहार्य सा नियम ही निर्मित कर दिया है,जिससे किसी भी

Scanned with OKEN Scanner

परिस्थिति या प्रवृत्ति की एकांतता या एकरसता का अस्तित्व ही समाप्त हो जाय।

संसार एवं उसका अभिन्न अंग मनुष्य और मनुष्य का यह जीवन-- तीनों ही चिर परिवर्तनशील हैं। संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक मनुष्य के जीवन में क्रमशः शैशवावस्था, बाल्यावस्था,bयुवावस्था, वृद्धावस्था व जरावस्था आदि का परिवर्तन तथा तृषा-तृप्ति, काम-विश्राम, निद्रा-जागरण एवं जीवन-मरण के अनेक परिवर्तन,अखण्ड व अनवरत रूप में मानव जीवन के साथ सम्पृक्त हैं।परिवर्तन जीवन का चिह्न है और अपरिवर्तन जड़ता का लक्षण है।जो जीवित हैं,उनमें परिवर्तन आएगा ही।इस परिवर्तन में ही रुचि का भाव भी सन्निहित होता है तथा एकरसता मानव- जीवन के हर क्षेत्र में ऊब और अरुचि उत्पन्न कर देने वाली है।

यही कारण है कि इन तमाम नित परिवर्तित परिस्थितियों से जूझता और संघर्ष करता हुआ भी मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा में निरन्तर आगे बढ़ता ही जाता है।इन असंख्य घटनाक्रमों के बीच जब कभी जीवन के किसी मोड़ पर कुछ पल ठहर कर मनुष्य एक नितांत निरपेक्ष समालोचक, पर्यवेक्षक या विश्लेषक की दृष्टि से अतीत का मूल्यांकन करता है तो उसे विगत जीवन में घटित असंख्य घटनाचक्रों के आभ्यंतर-कोष में स्थित अनेकविध पर्तों, कोणों, आयामों और छायाओं के स्पष्ट दर्शन होते हैं।उसके द्वारा साक्षी भाव से देखी गयी जीवन की वे अनमोल ,अनगिन-वैविध्यपूर्ण छायाएँ या शेड्स ही उसकी जीवन -यात्रा और उसकी गति को नियंत्रित और विकसित करके उसमें नाना रंग भरती हुई परिलक्षित होती हैं।तब मनुष्य इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वही विविधताओं भरे अनेक रंग,जो उसके जीवन–पटल पर अनेक आड़ी -तिरछी,अमिट व प्रभावी रेखाएँ खींचते चले गये थे,वे सब के सब आज भी समवेत हो उसके स्मृति-कोषों में बड़ी

Scanned with OKEN Scanner

दृढ़ता से विराजमान होकर सुभगता और विलक्षणता से उन अनुभूतियों की अभिव्यंजना में एक सहयात्री के मानिन्द अनेक अभिनव-अनोखे रंग भरते हुए अपने होने की सार्थकता सिद्ध कर रहे हैं। अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के इसी सार्थक कर्तव्य निर्वाह के क्रम में उनमें से कोई रंग उसे उत्तेजित करता है,कोई उसे प्रेम के प्रसार के लिये प्रेरित करता है,कोई उसे शांति का अहसास और संदेश देता है और कोई मातम का प्रतीक बन वेदना व करुणा के पारावार में हिलोरें लेने को विवश कर देता है।

दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि हम मनुष्यों के जीवन पर रंगों का यह शाश्वत व अमिट प्रभाव बड़ा ही व्यापक और विस्तृत है।हर एक रंग अलग-अलग इंसान को अलग-अलग तरीकों से आंदोलित करता रहता है; जिसके परिणामस्वरूप इंसान इन विविध रंगों के अनुप्रयोगों से अपने जीवनानुभवों की नानाविध जटिल भंगिमाओं को अनेक वैचारकी युक्त रंगों के मेल से नित-नवीन रूप में गढ़कर और सँवारकर,उन्हें इन्द्रधनुषी कलेवर प्रदान कर अन्ततः उनमें कल्पना के विशाल पंख लगाकर साहित्य या कला के उन्मुक्त-आकाश में ऊँची उड़ान भरने को स्वच्छंद छोड़ देता है।

'जीवन के रंग अनेक' काव्य-संग्रह भी इसी परिवर्तनशील,सुख-दुखात्मक, संघर्ष- सृजनात्मक उतार-चढ़ावों के बीच हिंडोले-झूलती, बनती-बिगड़ती ज़िंदगी के वैविध्यपूर्ण अनुभवों का एक पारदर्शी दर्पण है,जो हमें यह देखने को विवश कर देता है कि कैसे कठिनाइयों की कसौटी पर खरा उतरने के लिये तथा उससे होने वाली क्षति से बचने के लिये अपने अहंकार को कम करना आवश्यक है।कैसे वे वृक्ष जो झुकने की कला जानते हैं ,बड़े से बड़े झंझावातों में भी अपनी जड़ों सहित जमे रहते हैं।कैसे पानी की प्रबल धार भी उनका कुछ नहीं बिगड़ पाती।

Scanned with OKEN Scanner

किंतु बड़े से बड़े वे पेड़ जो कठोर होते हैं,अकड़ कर खड़े रहते हैं, वे कैसे एक ही झोंके में धराशायी हो जाते हैं?

कहने का अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य विनम्रता, निरहंकारिता जैसे तमाम सद्गुणों से सम्पन्न होते हैं,जो सहिष्णु होते हैं,उनका बड़ी से बड़ी कठिनाइयाँ या मुसीबतें भी कुछ नहीं बिगाड़ पातीं।सबसे प्रेम करने वालों तथा शिकायत न करने वालों को अनेक सहयोगी, जीवन की राह में अवश्य मिल जाते हैं।कठिनाइयाँ व अवरोध भी उनके साथ सहयोग के लिये हमेशा तत्पर रहती हैं।जो समझौता करना जानते हैं उनकी जटिल समस्याएँ भी सहज ही हल हो जाती हैं।

इस काव्य-संग्रह में जीवन के ऐसे ही अनुभवों की अनखुली-अधखुली परतों को उधेड़कर, उसमें अनेकविध जीवनचर्या के अद्भुत रंगों को भरकर,उनके स्वरूप को उकेर और उभारकर,उन्हीं संचित जीवनानुभवों से जीवन-पथ को सँवारने व प्रशस्त करने का एक उपक्रम मात्र किया गया है।ये जीवनानुभव ही प्रत्येक मनुष्य के भावी जीवन में संजीवनी-शक्ति का संचार कर उसे सार्थक प्रवाह देने में सक्षम बनाते चले जाते हैं।

निस्संदेह मेरी इस कृति के लिए प्रेरक बनकर एक आदर्श और सच्चे सहयोगी की भूमिका में जीवन के हर खुरदुरे, टेढ़े-मेढ़े और गहरे-उथले रास्तों पर मेरे पथ के साथी बन ढाल की तरह हर पल दृढसंकल्पित भाव से मुझे संरक्षित करते हुए,कदम- कदम पर कंधे से कंधा मिलाकर साथ निभाने वाले मेरे जीवनसाथी श्री विनोद यादव जी ने मेरी साहित्यिक अभिरुचियों को यदि पंख लगाकर उड़ने का साहस न दिया होता तो मैं आज जो भी अकिंचन सा कर पा रही हूँ,न कर पाती।उनके इस अप्रतिम सहयोग, उत्प्रेरक भाव व साथ के लिए मैं आजीवन उनकी ऋणी बने रहना पसन्द करुँगी।

Scanned with OKEN Scanner

मेरे प्यारे बच्चे ज्येष्ठ पुत्र और पुत्रवधू श्रेयस् - वन्दना,कनिष्ठ पुत्र कुमार शाश्वत और लाडले पौत्र ऋतम् का अतुल्य स्नेहिल सहयोग अविस्मरणीय ही नहीं अनिर्वचनीय भी है।इनसभी को अक्षय आशीषों से नवाजती हुई अपनी अभिन्न मित्र व पुत्री सरीखी पुत्रवधू सौभाग्याकांक्षिणी वन्दना को मैं जितना भी सराहूँ कम होगा।उसको सुनाए बिना मैं अपनी किसी भी सर्जना पर ठीक होने की मुहर ही नहीं लगा पाती।उसका मौन भाव ,चमकती आँखों व शान्त सी मुखमुद्रा के साथ मेरी रचनाओं को सुनते जाना और महसूस करते जाना तथा अपने मौन चेहरे पर मधुर-चंचल-मुस्कान बिखेरती मानो अपने मौन से ही वह मेरी कविता के अच्छे होने की मुखर स्वीकृति बड़ी त्वरित गति से देकर मेरी सर्जनाओं की औचित्यपूर्ण प्रामाणिकता सिद्ध करती चली जाती है।मैं उसकी इस सरल,सहज निश्छलता पर वारी जाती हूँ।

पूर्ण निष्ठा व समर्पित भाव से मेरी इस कृति को अविलंब मुद्रित व प्रकाशित कर अतिस्नेही, कर्तव्यनिष्ठ, श्रमनिष्ठ तथा निःस्वार्थ भाव से परसेवा में निरन्तर संलग्न रहने वाले अति आत्मीय अनुज सरीखे श्री आशीष कुमार पाण्डेय जी ने अपने कार्य के प्रति जो श्लाघनीय और अनुकरणीय प्रतिबद्धता और तत्परता प्रदर्शित की है उसके लिये मैं आपकी हृदय से आभारी हूँ और आपको हाधुवाद देती हूँ तथा भविष्य में भी आपसे ऐसे ही सहयोग की अपेक्षा रखती हूँ।

मेरा यह काव्यसंग्रह अनेक बहुरंगी भाव-भूमियों और जटिल जीवनानुभवों की एक लघु किंतु घनीभूत मंजूषा है।इसे आपसभी सुधी पाठकों के सम्मुख अनुभावनार्थ और सम्मत्यर्थ प्रस्तुत करते हुए मैं हर्ष का अनुभव कर रही हूँ।

Scanned with OKEN Scanner

आपके सुझाव व सम्मतियाँ ही मेरे सृजन-कर्म का यथोचित संबल बनेंगी और उसकी काँट- छाँट कर तराशने में सहभागी होकर मेरी भावी काव्ययात्रा का सुपथ प्रशस्त करेंगी।इसी आकांक्षा के साथ----

आशा यादव

१/१०/२०२०

एनीबेसेण्ट जयन्ती

भेलूपुर, वाराणसी।

Scanned with OKEN Scanner

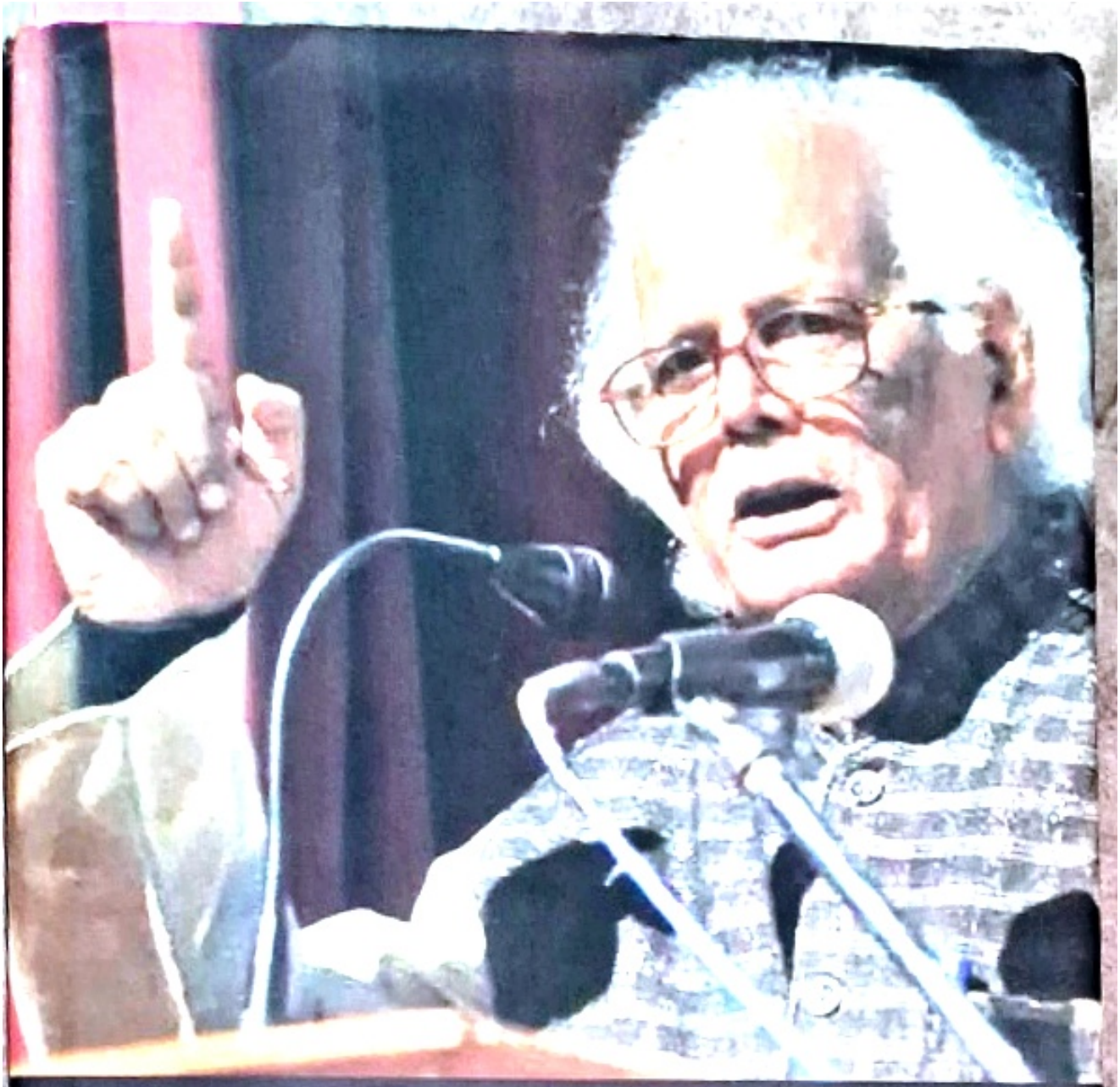

बात कहूं मैं खरी खरी

लोकधर्मी आलोचक चौथीराम यादव से बतकही

संपादक

धर्मवीर यादव गगन

आशीष कुमार 'दीपांकर'

बात कहूं मैं खरी खरी

लोकधर्मी आलोचक चौथीराम यादव से बतकही

संपादक

धर्मवीर यादव गगन

आशीष कुमार 'दीपांकर'

अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड
4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
फोन : 011-23281655, 011-43708938
E-mail: anamikapublishers@yahoo.co.in

प्रथम संस्करण : 2021

© चौथीराम यादव

आई.एस.बी.एन. 978-81-7975-879-3

भारत में मुद्रित

अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002 द्वारा प्रकाशित। शिवानी कम्प्यूटर्स, दिल्ली 110093 द्वारा शब्दांकित एवं विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रॉनिका सिटी, गाजियाबाद में मुद्रित।

अनुक्रम

चौथीराम यादव : जीवन और अकादमिक परिचय 9

भूमिका 13

अतिथि-भूमिका 17

1. 21वीं शताब्दी विमर्शों की शताब्दी है 27
(चौथीराम यादव से डॉ. आशा यादव की बातचीत)

2. शुद्धतावादी अकादमी अपनी प्रगतिशीलता वर्णवादी परंपरा में ही तलाशती है 50
(चौथीराम यादव से प्रमोद कुमार शर्मा की बातचीत)

3. रामचरितमानस में प्रतिबिम्बित लोक मूलतः वर्णाश्रमधर्मी लोक है 62
(चौथीराम यादव से रमण प्रसाद सिन्हा की बातचीत)

4. पौराणिक मतवाद को ही लोकभाषा में प्रस्तुत किया है तुलसीदास ने 83
(चौथीराम यादव से लक्ष्मण यादव की बातचीत)

5. पिछड़ा वर्ग मूलतः सांप्रदायिक या मुस्लिम विरोधी नहीं है 97
(चौथीराम यादव से संजीव खुदशाह की बातचीत)

6. दलित चेतना के विकास में बहुजन नायकों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है 102
(चौथीराम यादव से प्रेमा नेगी की बातचीत)

7. रही होगी बीसवीं शताब्दी गांधी, नेहरू और तिलक के नाम फिलहाल इक्कीसवीं शताब्दी तो अंबेडकर की शताब्दी है! 106
(चौथीराम यादव से शम्भू कुमार सिंह पत्रकार नेशनल दस्तक की बातचीत)

8. दलित साहित्य मनुष्य केंद्रित साहित्य है 116
(चौथीराम यादव से दिनेश पाल और दीपक कुमार की बातचीत)

21वीं शताब्दी विमर्शों की शताब्दी है

(चौथीराम यादव से डॉ. आशा यादव की बातचीत)

आपने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एक लंबे समय तक अध्यापक के रूप में एवं सेवानिवृत्ति के पूर्व 3 वर्षों तक विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया। आपने विश्वविद्यालय में युवाओं को दिशा देने के लिए किस तरह के प्रयास किए?

देखो, जब हम लोग वहां अध्यापक थे, तो उस दौर की छात्र-छात्राओं और आज की छात्र-छात्राओं में बहुत अंतर है। उस समय छात्र और छात्राएं किसी मंच पर खड़े होकर बोलने का साहस नहीं कर पाते थे। विद्यार्थियों के इस संकोच को दूर करने के लिए मैं और रामानारायण शुक्ल ने एक 'साहित्य-मंच' बनाया था। इस साहित्य-मंच के द्वारा बच्चों में बोलने का साहस पैदा किया गया, बोलने की प्रवृत्ति पैदा की गई। इस साहित्य-मंच के द्वारा पाठ्यक्रम में शामिल चीजों को विषय बनाकर, जैसे—तुलसी-जयंती, कबीरदास-जयंती, जयशंकर प्रसाद की जयंती आदि; इन पर बोलने के लिए छात्र-छात्राओं को प्रेरित करते थे, क्योंकि इन साहित्यकारों को हम पढ़ते-पढ़ाते भी थे। इस तरह हम लोगों ने उनमें साहस पैदा करने की कोशिश की। यह एक तरह का सृजनात्मक मंच था। इसमें से बहुत सारे लड़के-लड़कियां निखरकर निकले थे।

आज उसका सकारात्मक प्रभाव दिखाई भी पड़ता है कि अब अपने को आत्मविश्वास के साथ अभिव्यक्त करने वाले विद्यार्थियों की भरमार है। अनेक लड़के-लड़कियां मिलेंगे जो कहानियां, कविताएं, गद्य, अच्छे-अच्छे आलोचनात्मक लेख लिख रहे हैं। यह सब उस समय हम लोगों के लिए सपना था। ये जो बदलाव आया है, मैं देख रहा हूं, इसके लिए हम लोगों ने शुरू में प्रयास किए थे। धीरे-धीरे उन विद्यार्थियों के भीतर छुपी प्रतिभा बाहर आई और लेखक के रूप में भी बहुतेरे उनमें से निकल कर सामने आए-जैसे—देवेंद्र सिंह कहानी और दिनेश कुशवाहा कविता के क्षेत्र में अच्छा काम कर रहे हैं।

दूसरे और बहुत प्रयास होते थे, जैसे—यहां से काशीनाथ सिंह के संपादन में एक पत्रिका निकलती थी, जिसके लेखकों में इस विश्वविद्यालय के आई.टी. से लॉ और कई विभागों से लोग होते थे। उनको उसमें हम लोग आमंत्रित करते थे और उसमें

उनकी कहानियां व कविताएं आती रहती थीं। ऐसे लोगों को इकट्ठा करके शुरुआती दौर में ये बड़े प्रयास करने पड़े थे। उनकी रचनात्मक प्रतिभा को उभारने के लिए उनका वक्तृत्व कौशल बढ़ाने के लिए यह सब प्रयास करना पड़ा था।

हमें लगता है कि शायद आपके व्यक्तित्व की सरलता और आपका सीधापन आपकी सच्चाई व ईमानदारी इसमें आड़े आई है। आपने शायद उतनी दूर तक सोचा नहीं जब कि लोग दूसरों का लेख तक अपने नाम से छपवा लेते हैं। शुरू से ही आपके व्यक्तित्व की जो सरलता रही है, उसके कारण भी क्या आपका बहुत नुकसान नहीं हुआ?

लोग यह कहते हैं कि जब तक मैं यहां विभाग में था तब तक मेरे में न तो बोलने का वह खुलापन था और न ही लिखने की प्रवृत्ति थी। रिटायर होने के बाद ही यह सब शुरू हुआ। लोगों ने मेरे ऊपर लिखा भी है कि 'जब तक वे यहां थे तब तक उनमें एक अच्छे अध्यापक बनने की ललक थी।' अच्छे ढंग से पढ़ना-पढ़ाना है, उसी पर पूरा ध्यान था। हमारा व्यक्तिगत लेखन हो या कहीं बाहर जाना हो, यह उसके बाद ही शुरू हुआ। लेकिन यह भी मेरे अपने लिए नहीं था। मैं अपना जो कुछ सोचता हूं, बात करता हूं वह लोगों तक पहुंच जाए, इतना भर था। अपने व्याख्यानों को एक लेख के रूप में बनाऊं, इस ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। जो कुछ है, उसे दिया जाए बस। मुख्य रूप से यह था कि जो हमारे विचार हैं? हमारी जो मान्यताएं हैं या उनके बारे में हम जो सोचते हैं वह अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचे और प्रचारित हो। लोग उसको काफी पसंद भी करते थे और उससे प्रभावित भी होते थे।

एक अच्छे अध्यापक के रूप में आप जाने जाते हैं। आपके बहुत पुराने-पुराने विद्यार्थी हैं जिनके संपर्क में मैं भी कभी-कभी आती हूं। मुझे तो आमने-सामने क्लास रूम में आप से पढ़ने का अवसर नहीं मिला। लेकिन एक अच्छे अध्यापक के रूप में आपकी बड़ी ख्याति है। मैं भी इस समय एक अध्यापिका हूं तो आप कुछ गुरु मंत्र मुझे देना चाहेंगे जिससे मैं भी, आप जैसा तो कभी नहीं बन सकती हूं, लेकिन आपकी अध्यापन शैली के कुछ अंश को अपने में ढाल पाऊं?

उसमें पहली बात यह कि बिना तैयारी के क्लास में नहीं जाना चाहिए। जो टेक्स्ट हमें पढ़ाना है उस पर पूरी तरह तैयार होकर जाना चाहिए। जैसे—मान लो एक ही कविताएं हम लोग कई साल से पढ़ा रहे थे, फिर भी उसे देखते जरूर थे। उनके

ऊपर जो कुछ किताबें आ रही हैं, उन्हें देखते थे। जैसे भक्तिकाल को लो जो हमारा मूल विषय था। भक्तिकाल के ऊपर जब भी कोई नई किताब या नए लेख या नई तरह की चीजें आती थीं तो हम उसे जानने की कोशिश करते थे। इस प्रकार तैयारी करने पर हमें पिछले साल की अपेक्षा अगले साल पढ़ाने के लिए कुछ नई और अतिरिक्त चीजें मिलती थी। उन चीजों पर सोचते थे, उसे पढ़ते थे और पढ़ने से नई कल्पनाएं आती थीं। उसकी कई अर्थ व्यंजनाएं होती थीं और इस प्रकार उससे एक तैयारी होती थी। तो तैयारी के साथ क्लास में जाने पर आप बड़े आत्मविश्वास के साथ तथ्य व तथ्यगत विस्तार को अपने विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं। इसलिए पूर्व तैयारी होना बहुत जरूरी है।

आपको अजातशत्रु कहा जाता है जबकि आपकी आलोचना का स्वर प्रतिरोधी है। प्रतिरोधी आलोचक होते हुए भी आप अपनी अजातशत्रुता को कैसे कायम रख पाते हैं?

साहित्य और विचारधारा अपनी जगह है और हमारा जीवन उससे भिन्न है। हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि हमारा वर्ग-शत्रु कौन है और हमारा वर्ग-मित्र कौन है। जो हमारा वर्ग-शत्रु होगा उसके साथ संबंध जोड़ नहीं सकते और जो हमारा वर्ग-मित्र होगा उसके साथ संबंध रखना हम छोड़ नहीं सकते। इसी पहचान के कारण हम अपने वर्ग-मित्रों को छोड़ नहीं पाते हैं। हमारी जो विचारधारा है जिसके विषय में अब तक मैंने बातें की हैं उसके अनुसार जो वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था का समर्थक होगा, सवर्ण मानसिकता से ग्रस्त होगा ऐसे व्यक्ति के प्रति हमारा प्रतिरोध सामने आएगा जो इसका विरोध करने वाला होगा उसके प्रति पूरी सहानुभूति होगी। हम कबीर के साथ खड़े होंगे, निराला के साथ खड़े होंगे, नागार्जुन के साथ खड़े होंगे लेकिन तुलसी की विचारधारा से कभी सहमत नहीं हो सकते। उनके साहित्य की प्रशंसा करते हैं, उनके कवि कौशल की प्रशंसा करते हैं लेकिन उनकी पुरोहिती व वर्ण-व्यवस्थावादी विचारधारा के साथ कभी समझौता नहीं कर सकते हैं। वे दलित विरोधी, स्त्री विरोधी चेतना को लेकर जहां आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं, वहां उनके साथ मेरी सहमति नहीं है। पौराणिक और धर्मग्रंथों के प्रति उनके जुड़ाव का हम समर्थन नहीं करते। किंतु जहां वे व्यवहारिक दिखाई देते हैं वहां पर मैं अवश्य ही उनका प्रशंसक हूं। अपने चिंतन की परंपरा से समझौता न करना, उसके प्रतिरोध में खड़े रहना, यह मेरे स्वभाव में है लेकिन लोक जीवन और सामाजिक जीवन, लोगों के

रिश्तों के साथ जीना है जहां इस तरह की बातें हैं, उसके साथ मेरा समर्थन है।

आपने विभिन्न राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में 250 से अधिक व्याख्यान दिए हैं जो सूर, तुलसी, कबीर, भक्ति-आंदोलन, मीरा, बौद्ध-दर्शन, दलित-साहित्य, स्त्री-विमर्श आदि से जुड़े हुए हैं–इन सभी को लिपिबद्ध कर यदि पुस्तक रूप में प्रकाशित करवा दें तो विभिन्न विश्वविद्यालयों के न केवल हिंदी विभाग बल्कि दर्शन, इतिहास आदि विषयों के विद्यार्थियों के लिए भी एक ज्ञानवर्द्धक, उपयोगी वाङ्मय मिल जाएगा।

इस तरफ कई साहित्यकार मित्रों व लेखकों ने भी ध्यान आकर्षित किया है, क्योंकि मैं लिखता बहुत कम हूं और बोलने वाली चीजें ज्यादा हैं। लोगों ने इस बात को मार्क भी किया है और मेरे ऊपर लिखा भी है कि हमारी वाचिक परंपरा की आलोचना ज्यादा विकसित है और लिखित परंपरा वाली आलोचना बहुत कम। दो-चार साल पहले इस ओर लोगों का ध्यान गया है कि जो इतना हमने वक्तव्य दिया है, बोला है वह अगर लिपिबद्ध नहीं हुआ तो फिर तो वह गायब हो जाएगा; क्योंकि एक बार जो बात निकल गई, जो कह दिया गया वे चीजें उसी विषय पर दुबारा बोलने पर उस रूप में नहीं आएंगी दूसरी चीजें आ जाएंगी। लेकिन ये मेरी लापरवाही रही है, मैं इस ढंग से सोचता-समझता नहीं था कि इसे लिपिबद्ध किया जाए या लेख बनाया जाए। इस तरह के न जाने कितने व्याख्यान चले गए हैं, तो वह अब कहां मिलेंगे? इधर कुछ लोगों को मैंने देखा है कि व्याख्यान में रिकॉर्डर लेकर आते हैं। लोगों ने मुझे भी सुझाव दिया कि एक रिकॉर्डर रख लिया कीजिए। हमने कहा हमारे तो 100-150 व्याख्यान खत्म हो गए, वे कहां मिलेंगे।

एक दूसरी बात यह हो सकती है कि जहां जाइए आप शर्त रखिए कि हमारे व्याख्यान की सी.डी. बनाकर दीजिए। लेकिन मुझसे यह सब हो नहीं पाता है। जहां बुलाया जाता हूं वहां इतना ध्यान भी नहीं रहता और जो कहीं बना भी तो वह कभी लिपिबद्ध नहीं हो पाया। अब इस ओर ध्यान गया जरूर है लेकिन जितना नुकसान होना था वह तो हो चुका, क्योंकि वह अब कहीं से मिलेगा नहीं, अब कहां-कहां देखा जाए। इधर एक-दो वर्षों से मैंने इस बात पर ध्यान देना शुरू किया, तो जिन लोगों ने मेरी बातें रिकॉर्ड की थीं, वीडियो बनाई थीं, उनसे कुछ प्राप्त हुए हैं। दिल्ली में एक शोध छात्र है गगन, वह इस बात को लेकर ज्यादा सक्रिय है। वह तमाम भाषणों की ऐसी चीजों को इकट्ठा कर रहा है, लोगों से मांग रहा है। उसके कुछ लिपिबद्ध लेख भी

आए हैं। इधर कुछ लोगों ने जो कुछ लिपिबद्ध किया उसे मैंने नए सिरे से एक लेख के रूप में बना भी दिया है। इस तरह पांच-छह व्याख्यानों के लेख बने हैं। ऐसे कुछ और हैं जिनके लेख बनाने हैं, लेकिन अभी बना नहीं पा रहा हूं। जितना इधर उपलब्ध हो रहा है, उतना तो मैं लिपिबद्ध कर रहा हूं, लेकिन उसका एक बहुत बड़ा अंश खत्म हो गया। विभिन्न विषयों पर कितने-कितने व्याख्यान विश्वविद्यालयों और अन्य जगहों पर जो दिए गए थे, वह तो प्राप्त होने से रह ही गए। इधर थोड़ा सचेत हुआ हूं कि ये वक्तव्य जहां कहीं से मिल जाए तो इसे इकट्ठा कर लूं। ऐसा प्रयत्न इधर चल रहा है।

आपकी नवंबर, 1971 से जनवरी, 2003 तक आचार्य व विभागाध्यक्ष के रूप में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में 33 वर्षों की लंबी साहित्य यात्रा रही। आपको विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग से सेवानिवृत्त हुए लगभग डेढ़ दशक (14 वर्ष) होने को आए हैं। इस लंबी यात्रा के दौरान भारतीय-साहित्य की प्रवृत्तियों में किस तरह के बदलाव को रेखांकित करना चाहेंगे?

बदलाव तो, समाज में होते ही हैं क्योंकि वह एक निरंतर होने वाली प्रक्रिया है। उसका सीधा असर भी साहित्य पर पड़ता है, यह भी सत्य है। इस लंबे अंतराल में होने वाले सामाजिक व राजनैतिक जीवन के बदलावों का प्रतिबिंब भी साहित्य के ऊपर अवश्य दिखाई पड़ता है और साहित्य उसकी एक संवेदनशील अभिव्यक्ति भी होता है। इस लंबे समय के दौरान भारतीय साहित्य की प्रवृत्तियों तथा भारतीय साहित्य लेखन के जो अनेक स्वरूप विकसित हुए हैं उसको दृष्टिगत रखते हुए हम यह कह सकते है कि सर्वाधिक बदलावों का दौर 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक से लेकर 21वीं शताब्दी के पहले दशक के बीच का समय ही रहा है। इसीलिए जब 21वीं शताब्दी का स्वागत करने का एक प्रयास राजीव गांधी के द्वारा किया गया तो हमारी भारतीय राजनीति और सामाजिक जीवन दोनों बदलाव के साथ नई दिशा की ओर जाती हुई दिखाई देती है। उन्होंने एक बड़ी आशा व आकांक्षा के साथ महत्वाकांक्षा जगाई। यह वही समय है, जब विमर्शों का दौर शुरू होता है—भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण का विमर्श। इस प्रकार आर्थिक विमर्श शुरू होते हैं। दूसरा विमर्श, सामाजिक-विमर्श से जुड़ा है—दलित-आंदोलन और नारीवादी—आंदोलन। हां, आदिवासी-विमर्श थोड़ा बाद में शुरू हुआ।

यह कहा जा सकता है कि 21वीं शताब्दी विमर्शों की शताब्दी है। विमर्शों में दो

मुख्य है—एक आर्थिक-विमर्श और दूसरा सामाजिक-विमर्श। आर्थिक-विमर्श में भी पहल-पहल मची हुई थी। अमेरिका से साहित्य, विचारधारा, इतिहास और सभ्यता के अंत की घोषणा कर दी गई। यानी एक प्रकार से इसके पहले जो विश्व की राजनीति है, जो साम्यवादी रूस का वर्चस्व है, वह धीरे-धीरे टूटा और इस वर्चस्व के टूटने के बाद अमेरिका फिर एक नव-साम्राज्यवाद के रूप में उभरता है। इस प्रकार जो मृतप्राय साम्राज्यवाद था, वह नव-साम्राज्यवाद के रूप में जागरूक हुआ और विजय के गर्व में उसने तमाम चीजों के अंत की घोषणा कर दी—इतिहास, विचारधारा, यहां तक कि साहित्य के अंत की। यानी एक प्रकार से एक 'एंटी लिट्रेचर' की प्रवृत्तियों का ज़माना आया।

विचारधारा के अंत का मतलब होता है कि रूस में जो किसानों-मजदूरों की पक्षधरता करने वाली साम्यवादी-समाजवादी विचारधारा थी, उसका अंत हो गया। सीधे-सीधे अंत का अर्थ रूस की ओर था। सभ्यताओं के अंत का मतलब है कि सभ्यताओं के संघर्षात्मक इतिहास का अंत। यानी अमेरिका और यूरोपीय देशों में जो पूंजीवादी सभ्यता उभर कर आई है, इसने सबका अंत कर दिया है। इन सभ्यताओं के अंत की घोषणा करने के साथ ही थोड़े ही दिनों के बाद सभ्यताओं का संघर्ष शुरू हो गया। कुवैत, इराक में अमेरिका की जो दखलंदाजी आई, वह जिस रूप में वहां गई उसने उन देशों को ध्वस्त किया, जो बड़ी मुस्तैदी से अपना विकास कर रहे थे, इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन को बुरी तरह परास्त किया गया—यही सब सभ्यताओं के संघर्ष का प्रारंभ था। यानी जो ग़लत बयानबाजी हो रही थी कि सभ्यताओं का अंत हो गया, वे अब ग़लत साबित भी होने लगे थे। सभ्यताओं के संघर्ष का जो मतलब था, वह सीधे-सीधे इकोनॉमिक संघर्ष या आर्थिक-संघर्ष के रूप में था। वह सभ्यताओं का संघर्ष नहीं था। जो खाड़ी व अरब के देश हैं, उनके यहां तेल का उत्पादन होता है और उनके तेल उत्पादन से पूरे विश्व का आर्थिक विकास चलता है। वहां तेल उत्पादन बंद हो जाए तो पूरे दुनिया का कारोबार बंद हो जाएगा। अमेरिका की वहां इतनी ज्यादा दखलंदाजी थी कि तेल यहां पैदा होता था और उसका मूल्य वाशिंगटन में तय होता था। यानी इसका नियंत्रण अमेरिका के हाथ में था कि तेल कहां जाना चाहिए, उसका मूल्य कितना होना चाहिए और यह कब होना चाहिए।

इस प्रकार से अमेरिका का उन देशों में यह आर्थिक हस्तक्षेप था। अतः उन देशों ने अपनी आर्थिक आजादी के लिए संघर्ष किया और संघर्षों से जो तमाम चीजें निकल कर आईं, उनमें से एक आतंकवाद भी था, चूंकि ये मुस्लिम देश थे और अपनी

आर्थिक आज़ादी की लड़ाई लड़ रहे थे। उस आर्थिक आज़ादी की लड़ाई में उन्हें मारा गया, उन्हें घेर लिया गया। अतः उन्होंने एक प्रकार से जेहाद शुरू कर दिया। इस प्रकार आतंकवाद एक तरह अमेरिका की नाजायज औलाद है। उन्हीं के द्वारा पैदा की हुई है और आतंकवाद के आज सबसे ज्यादा भुक्तभोगी वही पूंजीवादी पश्चिमी देश ही हो रहा है। यह तो आर्थिक-विमर्श था। दूसरे, जो सामाजिक-विमर्श था उसने सीधे हमारे साहित्य को प्रभावित किया और इसके भीतर से दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श और आदिवासी-विमर्श ये सब पैदा हुए। इस प्रकार जो बदलाव आप के सामने आ रहे थे, इन सब का असर कहीं न कहीं हमारे साहित्य पर पड़ रहा था। इस दौरान की ये सारी प्रवृत्तियां किसी न किसी रूप में हमारे साहित्य में दिखाई पड़ती हैं।

हिंदी की विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं-*आलोचना, हंस, तद्भव, प्रगतिशील वसुधा, बहुवचन, संवेद, अभिनवकदम, सृजन-संवाद, शुक्रवार, दलित-अस्मिता, अपेक्षा, बुद्ध संकेत, शब्द-योग, उद्भावना, युद्धरत आम आदमी, सोशल ब्रेनवाश, फॉरवर्ड प्रेस* आदि में आपके लगभग 30 शोध-आलेख प्रकाशित हैं। इनमें आपकी लेखनी की तीक्ष्ण धार और निर्भीक दो टूक टिप्पणियां--आपकी साहसी मौलिक दृष्टि, सुदृढ़ विचार शृंखला का दिग्दर्शन कराती हैं। क्या आपको नहीं लगता कि राजेंद्र यादव की ही भांति इन सारी विधाओं पर कार्य करते हुए भी आप नियमित रूप से पत्रिका का संपादन भी करें। इससे आपके समाजवादी प्रतिबद्धता के साथ हाशिये के समाज पर केंद्रित लेखन एवं सामाजिक न्याय हेतु सांस्कृतिक आंदोलन की दिशा में सक्रियता को और अधिक बल मिलेगा?

ये तो ठीक है कि पत्रिकाएं किसी भी आंदोलन को गति देने के लिए एक बड़ा माध्यम होती हैं। जिसमें एक मिशनरी ढंग से अपने विचारों को बताने और प्रचारित करने का ज्यादा मौका है। लेकिन संपादकीय दायित्व एक खास तरह की मनोवृत्ति होती है। मैंने कभी इस तरह से सोचा ही नहीं कि मेरे द्वारा किसी पत्रिका का संपादन किया जाना चाहिए। उसके कई कारण हो सकते हैं। अपने विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम को हर साहित्यकार अलग-अलग ढंग से चुनता है। जैसे मैं आलोचना के माध्यम से--कभी लिखकर, कभी बोलकर, व्याख्यानों के द्वारा अपनी विचारधारा को रखता हूं, जिससे मेरे विचार और प्रसारित होते हैं। पत्रिका के संपादन की ओर ध्यान संभवतः इसलिए भी नहीं गया कि एक तो वह अर्थसाध्य होती है, दूसरे बहुत अधिक श्रम उस पर लगाना होता है। तमाम लोगों से लेख मांगना, इकट्ठा करना, उसका स्तर

बनाना, उसमें काट-छांट करना यह सबके वश की बात नहीं है। यह जो उस क्षेत्र में लगातार काम कर रहे हैं, उन्हीं के लिए करना आसान होता है। इसलिए उस ओर मैंने कभी नहीं सोचा।

माध्यम अलग-अलग होते हैं। कोई पत्रकार के रूप में, कोई लेखक के रूप में, कोई आलोचक के रूप में, जिसकी जैसी क्षमता होती है उस ढंग से अपनी बात कहता है। कुछ लोग हैं जो लेखक हैं—वे अपनी बात कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास के माध्यम से रखते हैं। कुछ मंच के माध्यम से अपनी बात रखते हैं। जो आलोचक हैं वे आलोचना के माध्यम से रखते हैं। लक्ष्य सबके एक हैं। प्रश्न यह है कि आपके एप्रोच क्या हैं? समाज के परिवर्तन का, समाज को बदलने को लेकर एक सांस्कृतिक-आंदोलन की दिशा में पत्रिका भी काम कर रही है। आलोचक भी काम कर रहे हैं, लेखक भी काम कर सकते हैं। माध्यम अलग-अलग होते हैं, लक्ष्य सभी के एक हैं।

साहित्य और पत्रकारिता का तो किसी समय में एक संयुक्त मोर्चा था, जैसे स्वाधीनता आंदोलन के दौरान साहित्यकार, पत्रकारिता के माध्यम से साम्राज्यवाद की लड़ाई लड़ते थे। साहित्य और पत्रकारिता का संयुक्त मोर्चा था। उनमें एक मिशनरी भाव था। बाज़ारवाद के आने के बाद पत्रिका का जो मिशनरी भाव था उस पर धीरे-धीरे कार्पोरेट का कब्जा हो गया। आज के परिप्रेक्ष्य में अगर देखें तो चाहे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो चाहे प्रिंट मीडिया हो, सभी 'मीडिया हाउस' कार्पोरेट के कब्जे में है इसलिए आप स्वतंत्र रूप से लिख ही नहीं सकते। संपादक एक प्रकार से ठेके पर काम कर रहा है। रिपोर्टर रिपोर्ताज बनाए, फीचर बनाए लेकिन यदि मालिक नहीं चाहता तो वह उसे पत्र-पत्रिकाओं में नहीं छाप सकता है। तो मीडिया में जो 80 प्रतिशत सामान्य जनता है उसकी बात ही नहीं है, केवल 20 प्रतिशत लोगों की बात होती है। आज की स्थितियां पूरी तरह बदल गई हैं। जबकि पहले अधिकांश साहित्यकार जैसे-प्रेमचंद भी पत्रिकाएं निकालते थे, भारतेंदु हरिश्चंद्र पत्रिकाएं निकालते थे। वे पत्रकार थे उतने ही जितने बड़े लेखक थे। माखनलाल चतुर्वेदी साहित्यकार भी थे और अखबार भी निकालते थे। गणेश शंकर विद्यार्थी आदि सभी साहित्यकार भी थे और पत्रकार भी थे और पत्रकारिता केवल साहित्य के साथ ही नहीं जुड़ी हुई थी बल्कि राजनीति के साथ भी उसका उतना ही जुड़ाव था।

जैसे नेहरू जी दो अखबार निकालते थे—एक अंग्रेजी में, एक हिंदी में, गांधी जी दो अखबार निकालते थे—एक गुजराती में, एक अंग्रेजी में। लाला लाजपत राय जी

दो अखबार निकालते थे—एक अंग्रेजी में, एक पंजाबी में। इसी तरह सारे बड़े-बड़े नेताओं के दो अखबार थे। अंग्रेजी अखबार का मतलब था साम्राज्यवाद की जो लड़ाई लड़ रहे हैं उस लड़ाई के तहत अपनी बात को अंग्रेजों तक पहुंचाना और जो अपनी प्रांतीय भाषा में अखबार निकालते थे उनके माध्यम से अपनी बात को जनता तक पहुंचाना। इस प्रकार साहित्य—समाज और राजनीति सब एक-दूसरे से जुड़ा हुआ था। वे साम्राज्यवाद की लड़ाई एक संयुक्त मोर्चा बनाकर लड़ रहे थे। आज़ाद भारत में ये सारी चीजें टूटी हैं। साहित्य अलग हो गया है, पत्रकारिता अलग हो गई है। जो पत्रकार हैं, वह पत्रिकाएं ही निकाल रहा है, साहित्य से उसका कम सरोकार है। बहुत कम ऐसे हैं, जो साहित्यकार भी हैं और पत्रिकाएं भी निकाल रहे हैं। हर विधा से जुड़े लोग अलग-अलग दिशा में काम कर रहे हैं।

'द्विवेदी स्कूल' आलोचना की महत्वपूर्ण कड़ी है आपकी पुस्तक *हजारी प्रसाद द्विवेदी-समग्र पुनरावलोकन*। द्विवेदी स्कूल के संस्थापक डॉ. नामवर सिंह की आलोचना पुस्तक *दूसरी परंपरा की खोज* से आपकी आलोचना-दृष्टि किन अर्थों में भिन्न है?

द्विवेदी जी ने परंपराओं को खोजा था। उनका यह कार्य बड़ा महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि रामविलास शर्मा द्विवेदी जी को हिंदी आलोचना से लगभग बाहर करने पर आमादा थे। उनकी दृष्टि में रामचंद्र शुक्ल से सीधे रामविलास शर्मा और रामविलास शर्मा से आलोचना के विकास तक, आलोचना को पहुंचना चाहिए था। इसके बीच में कोई बाईपास उन्हें मंजूर नहीं था। जबकि *दूसरी परंपरा की खोज* से परिणाम यह हुआ कि हिंदी आलोचना वाया हजारीप्रसाद द्विवेदी ही विकसित हो सकती है। इस प्रकार *दूसरी परंपरा की खोज* ने आलोचना में द्विवेदी जी के महत्त्व को रेखांकित किया। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम था। इस दूसरी परंपरा, जो वाया हजारीप्रसाद द्विवेदी विकसित हुई थी, का इतना अधिक विरोध हुआ कि नामवर सिंह बिल्कुल अकेले पड़ गए।

किसी भी प्रतिरोधी परंपरा का विरोध तो स्वाभाविक ही है। अकेले पड़ने के बाद मैंने जिस समय अपना पहला ही लेख दूसरी परंपरा के पक्ष में लिखा था और उसकी कतरन नामवर जी के पास भेजी थी तो एक बड़े लेखक का पहली बार लिखने वाले आलोचक के लिए इस प्रकार लिखना कि 'अंततः अपनी परंपरा की रक्षा के लिए आपने कलम उठा ही ली और आज लगा कि मैं अकेला नहीं हूं। अब जब म्यान से

तलवार निकाल ही ली है तो तलवार को वापस म्यान में मत रखना'—इसका तात्पर्य यह है कि दिल्ली जाने के बाद भी जो विरोध का स्वर है, वह कम नहीं हुआ था। वह अभी जारी था। तो मेरी जो *हजारीप्रसाद द्विवेदी-समग्र पुनरावलोकन* पुस्तक है, वह नामवर जी के प्रोत्साहन का ही परिणाम है। नामवर जी ने जो पत्र लिखा था उससे प्रोत्साहन पाकर दो टूक लिखने का साहस मेरे भीतर उत्पन्न हुआ और परिणामस्वरूप यह पुस्तक सामने आई और नामवर जी का वह प्रोत्साहन से भरा हुआ पत्र इस पुस्तक की भूमिका रही क्योंकि उन्होंने उस पत्र में आगे भी लिखा था कि 'यदि आपने म्यान से तलवार निकाल ही ली है तो इसको वापस मत रखना'—इसका इतना बड़ा प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा कि उस प्रभाव के रूप में मेरी वह पहली किताब *हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्य* और उसके बाद *हजारीप्रसाद द्विवेदी समग्र-पुनरावलोकन* आई। उस दूसरी परंपरा का विस्तार यहां से शुरू होता है। लेकिन उस विस्तार की अगली कड़ी है *लोकधर्मी साहित्य की दूसरी धारा*, जहां मेरे तमाम विमर्श दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी-विमर्श और पसमान्दा-विमर्श के सवाल आते हैं। जिनका उल्लेख अपने मौखिक व्याख्यानों में मैंने ज्यादा किया है और लिखित लेखों में भी वे चीजें आई हैं।

आगे चलकर वह *उत्तर शती के विमर्श और हाशिये का समाज* में पूरी तरह हाशिये के समाज के प्रवक्ता के रूप को स्थापित करती हैं तथा दलित मंचों पर दलित लेखकों के यहां उन के सवालों पर मैं बार-बार बुलाया जाता हूं। 'अंबेडकर' व 'फुले' पर व्याख्यान के लिए भी मैं बुलाया जाता हूं। जहां तक अंबेडकर का प्रश्न है वे केवल दलित ही नहीं बल्कि 'पूरे हाशिये के समाज के प्रवक्ता' थे। उनको मिनिमाइज किया जा रहा है, यह कहना कि वे केवल दलित समाज के चिंतक या विचारक हैं। जब कि उन्होंने स्त्रियों के लिए लड़ाई लड़ी, किसानों के लिए बड़ी किसान रैलियां निकालीं, मजदूरों के लिए तो बहुत ज्यादा संघर्ष किया। उनकी दलित समाज के लिए ज्यादा प्रतिबद्धता इसलिए थी कि दलित समाज ही सबसे ज्यादा घृणित, अछूत तथा हमेशा से जलील होता रहा था। अस्पृश्यता का दर्द दलित समाज ने ही झेला था और झेल रहा है। इसलिए अंबेडकर की सबसे अधिक प्रतिबद्धता इस सबसे अधिक पीड़ित और जलालत झेलने वाले दलित-समुदाय के प्रति बनती थी। यह सारी चीजें उस समय भी थीं और आज भी समाप्त नहीं हुई हैं। इन्हीं को लेकर मैं आगे इसे विकसित कर रहा हूं।

आपको विविध अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं 'दि हेग', 'रोटरडम' एवं 'एम्सटर्डम' में सम्मान, तुलसीदास और भक्ति आंदोलन केंद्रित व्याख्यानों के लिए हालैंड आमंत्रित किया गया था तथा राष्ट्रीय सम्मानों–'कबीर-सम्मान', 'अस्मिता सम्मान', 'अंबेडकर प्रियदर्शी सम्मान', 'लोहिया–साहित्य सम्मान', 'बुद्ध सम्मान', 'सावित्री त्रिपाठी सम्मान' आदि से अभिनंदित किया गया। हम सभी आपके अधिकांश विद्यार्थी व साहित्य-जगत ये चाहता है कि आपको 'भारत-रत्न' सम्मान मिलना चाहिए। इस विषय में आपकी क्या राय है?

ये सारे सम्मान चाहे कबीर-सम्मान हो, अंबेडकर-सम्मान हो, लोहिया-सम्मान हो, बुद्ध-सम्मान हो, ये प्रतिरोधी परंपरा के नायकों के नाम पर मिला है। ये सभी उस प्रतिरोधी संस्कृति के सिंबल हैं। इनके लिए सम्मान ही क्यों मिले? जो 'भारत-रत्न' सम्मान होता है वह राजनीतिक रूप से साहित्यकारों को साहित्य के लिए प्रदान किया जाता है। जिसने राजनैतिक रूप से या अन्य क्षेत्रों में बड़ा काम किया हो उनको यह सारे सम्मान दिए जाते हैं। तो यह सम्मान तो उस प्रतिरोधी परंपरा से जुड़े सम्मान में नहीं आएगा। यह उन लोगों को मिलता है जो अपने क्षेत्र के जाने-माने प्रतिष्ठित लोग हैं। एक साहित्यकार तो निर्लिप्त भाव से अपने साहित्य कर्म में लगा रहता है। वह लेखन या आलोचना कर्म इसलिए नहीं करता कि उसे सम्मान मिले। इसलिए उसके बारे में सोचने का तो सवाल ही नहीं उठता है।

क्या ये प्रतिरोधी परंपराएं और सामाजिक-अंतर्विरोध राजनीति का हिस्सा नहीं है? जबकि प्रत्येक युग की युगीन परिस्थितियों में राजनीति अपनी अहम भूमिका निभाती है?

यह तो ठीक है लेकिन जब इस तरह के लोगों का वर्चस्व राजनीति में बनेगा तब न उनकी आवाज़ सुनी जाएगी। राजनीति तो ऐसे लोगों की घोर विरोधी होती है। इसलिए ऐसे लोगों को कोई राजनेता बर्दाश्त ही नहीं करेगा। प्रतिरोधी-परंपरा के लोग हमेशा सत्ता का विरोध करते हैं और जो जनता, सत्ता के विरोध में खड़ी होगी उसे यह सरकार क्यों चाहेगी, सम्मान देना तो दूर की बात है। सम्मान तो उन्हें मिलेगा जो उनके पिट्ठू होंगे, उनकी चापलूसी करेंगे, जो उनके पक्ष में बोलेंगे और जो कार्य हम जैसे आलोचक कभी कर ही नहीं सकते। इसलिए ऐसे पुरस्कार हमें मिलने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

आप मेरे जैसे साहित्य को आजीविका बनाने वाले अपने शिष्यों को क्या संदेश देना चाहेंगे?

शिक्षक तो सभी होते हैं और वह आपका एक दायित्व भी होता है। लेकिन इसके अतिरिक्त कुछ रचनात्मक कार्यों से आप लोगों को अवश्य जुड़ना चाहिए। जिसमें जैसी क्षमता हो उसको पहचान कर यह देखिए कि आप शिक्षण-कार्य के साथ-साथ और क्या-क्या कर सकते हैं। जैसे लिखने-पढ़ने का शौक किसी में होगा, एक सोशल एक्टिविस्ट की तरह काम करने की प्रवृत्ति किसी में होगी, समाज से जुड़ने का जज़्बा किसी में होगा। आप में क्रिएटिव क्षमता है—कविता लिखने की, कहानियां लिखने की, उपन्यास लिखने की तो आप वह कीजिए। आलोचकीय प्रतिभा को यदि आप विकसित करना चाहते हैं तो आलोचना कर्म से आप जुड़ सकते हैं। तो अध्यापन के साथ जब आप इन सबसे जुड़ेंगी तो यही आप की उपलब्धि होगी और इसी से आपकी पहचान बनेगी। अध्यापक होना, यह कोई खास पहचान नहीं बनाएगा। तो आपका रचनात्मक-कर्म, आलोचना-कर्म, पत्रिका-संपादन, सोशल-एक्टिविस्ट के रूप में कार्य करना, यही आपकी उपलब्धि के रूप में देखा जाएगा और हर अध्यापक के भीतर इस तरह की कोई न कोई प्रतिभा अवश्य विकसित होनी चाहिए। इससे आपका अध्यापकीय व्यक्तित्व और अधिक व्यापक बनेगा, आप और अधिक सशक्त बनेंगी, आपकी अध्यापकीय प्रतिभा का और अधिक विकास और विस्तार होगा।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने *आलोचना और इतिहास दृष्टि* में जिस दूसरी परंपरा का सूत्रपात किया, प्रो. नामवर सिंह ने अपनी आलोचनात्मक प्रतिभा से जिसे एक धारा का रूप दिया, उसी परंपरा की अगली कड़ी का आलोचक आपको भी माना जाता है। प्रो. नामवर सिंह ने तो आपके लिए यहां तक कह दिया कि 'अंततः अपनी परंपरा की रक्षा के लिए आपने कलम उठा ही ली। आज लगा कि मैं अकेला नहीं हूं।' क्या कारण है कि आपने अपने को आलोचना की इस दूसरी परंपरा से ही जोड़ा, 'शुक्ल स्कूल' से नहीं?

स्वाभाविक है, सभी लोगों की दृष्टि इस ओर गई है कि जब से नामवर सिंह जी की *दूसरी परंपरा की खोज* पुस्तक प्रकाश में आई तब से मेरी सोच में, मेरे चिंतन में, मेरे जीवन में, मेरी एप्रोच में बहुत ज्यादा परिवर्तन हुआ। कई लोगों ने यह कहा कि

विश्वनाथ प्रताप सिंह जब यहां के प्रधानमंत्री थे तो उन्होंने जब 'मंडल-कमीशन' लागू किया तो उससे हमारे समाज में बड़ा परिवर्तन आया और एक आंदोलन खड़ा हुआ।

उपर्युक्त दोनों आंदोलनों का मेरे जीवन पर, मेरे साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह बात सही है कि 'दूसरी-परंपरा' के आने के बाद एक दृष्टि का उन्मेष होता है। अपनी परंपरा को, अपने इतिहास को, अपनी संस्कृति को जांचने और परखने की एक दृष्टि मिल जाती है। उस दृष्टि से हम तमाम परंपराओं का पुनर्मूल्यांकन करते हुए आगे बढ़ते हैं। उस दृष्टि से मैंने देखा कि जो हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं वे क्यों ब्राह्मण समाज में अछूत की तरह माने जाने लगे, क्यों समझ लिया गया कि जो भी दूसरी परंपरा यानी प्रतिरोध की परंपरा है वह पहली जो पौराणिक और वैदिक परंपरा अर्थात् ब्राह्मणवादी-परंपरा है, उसके प्रतिरोध की परंपरा है। यह कोई नई बात नहीं है। यह शुरू से ही है। जितनी पुरानी पौराणिक और वैदिक परंपरा है उतनी पुरानी उसकी विरोध और प्रतिरोध की परंपरा भी है। वैदिक-परंपरा तो श्रमण-परंपरा विरोधी है, उसके विरोध में लोकायतों की परंपरा, आजीविकों की परंपरा, बौद्ध दार्शनिकों की परंपरा फिर सिद्धों-नाथों की परंपरा, निर्गुण-धारा के संतों की परंपरा तक ये चला आ रहा है और वैदिक-पौराणिक-परंपरा का विकास सीधे तुलसी के *रामचरितमानस* तक आ रहा है। दूसरी परंपरा का विकास इससे ज्यादा हुआ है, क्योंकि यह मानवतावादी परंपरा है।

आपको स्त्री-विमर्श व दलित-विमर्श का शलाका पुरुष कहा जाता है। साथ ही साथ, आपको बिल्कुल नए विमर्श 'पसमांदा विमर्श' का तो जनक मान लिया गया है। आपको इस आदिवासी प्रजाति की किस पीड़ा ने आहत किया कि आपने उनकी तह तक जाकर उनकी दैनंदिन समस्याओं से अवगत होकर इस नई प्रजाति की मूलभूत आवश्यकताओं व समस्याओं से रूबरू होकर उन पर लेखन और व्याख्यान विमर्श के स्तर पर प्रारंभ किया?

वैदिक-पौराणिक-परंपरा अन्याय को स्थापित करने वाली परंपरा है। वर्ग-भेद करने वाली उसका समर्थन करने वाली, लिंग-भेद करने वाली, स्त्री-विरोधी परंपरा है। सारे धर्म-ग्रंथ स्त्री-विरोधी हैं। दलितों के विरोध में सारी आचार-संहिता बनी है। दलित अस्पृश्य हैं। वे यदि किसी रास्ते पर चले जाए तो उसके लिए क्या विधान है? उनके पीठ के पीछे एक झाड़ू बंधा होना चाहिए। ताकि जिस रास्ते से वे चलें, उस

रास्ते को बुहारते हुए चलें जिससे वह रास्ता स्वच्छ हो जाए। स्त्रियां कमर से ऊपर कपड़े नहीं पहन सकती हैं, नंगी रहती हैं। दक्षिण और केरल राज्य में आज तक औरतें इसके लिए संघर्ष कर रही हैं। जिससे उनको ऊपर के वस्त्र पहनने का अधिकार मिल सके। यह जो व्यवस्था है यह स्त्रियों व दलितों का इतना अधिक अपमान करती रही है। दलित हमारा खाना छू नहीं सकते। इतना ही नहीं, यदि हम खाना खा रहे हों तो वे दिखाई नहीं पड़ने चाहिए। इतने भद्दे विधान बनाए गए हैं, दलित-विरोधी और स्त्री-विरोधी ये सभी उन्हीं सारे धर्मशास्त्रों और वैदिक-पौराणिक परंपरा के अंतर्गत बनाए गए हैं। उनके विरोध में आवाज बराबर उठ रही है। आजीवकों की, चार्वाकों की, बौद्ध दार्शनिकों की, यह जो प्रतिरोध की दूसरी परंपरा रही है, उसमें हमारे आचार्यों में रामचंद्र शुक्ल के बाद हजारीप्रसाद द्विवेदी पहले आलोचक हैं, जिन्होंने मानवतावाद के विरोध वाली परंपरा का विरोध किया। मानवता के विरोध वाली यह परंपरा ब्राह्मणवादी व्यवस्था है।

इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विरोध में खड़ी मानवतावादी व्यवस्था को लेते हुए हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने सिद्धों, नाथों, संतों, सिक्ख गुरुओं सभी का स्मरण किया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर पर लिखा जो मानवतावादी थे और रामचंद्र शुक्ल ने तुलसी पर लिखा जो वर्णव्यवस्थावादी थे और समन्वय के नाम पर बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, जो व्यर्थ हैं। तो यदि मोटे तौर पर देखा जाए तो दो प्रकार की परंपराएं चली आ रही हैं—पहली ब्राह्मणवादी-व्यवस्था जो जाति व लिंग-भेद पर आधारित है, दूसरी मानवतावादी-परंपरा है जो हजारीप्रसाद द्विवेदी के यहां मिलती है। इनकी परंपरा में लोकायतों और बुद्ध की परंपरा का समावेश है। यहां तक कि जयशंकर प्रसाद में भी कुछ अंशों में बौद्ध-परंपरा देखने को मिलती है। इसीलिए इनको भारतीय लेखक कहा जाता है, इन सबका समावेश जब हमारी परंपरा में होगा तभी यह परंपरा भारतीय परंपरा कही जाएगी क्योंकि इस भारतीय-परंपरा में आर्य और आर्येतर दोनों ही परंपराएं सम्मिलित हैं। द्विवेदी जी ने *महाभारत* का, अनार्य परंपरा का, कालिदास—जिनमें आर्य और अनार्य दोनों ही तत्त्व विद्यमान हैं—का विकास किया। इसलिए द्विवेदी जी ने जो सिंबल लिए हैं वह दूसरी परंपरा के सिंबल हैं। जो कालिदास से लेकर कबीर तक को अपने में समेटे हुए है। उनमें सिद्धों और नाथों का भी समावेश है। द्विवेदी जी की यह परंपरा प्रतिरोध की परंपरा है। जो वर्चस्ववादी सत्ता व्यवस्था है, जो रिलीजियस ब्यूरोक्रेसी है, धार्मिक वर्चस्ववाद है, इसके विरोध में यह परंपरा विकसित होती है। इससे जाहिर है कि जो आम आदमी होगा, जो उस

जाति-व्यवस्था का, वर्ण-व्यवस्था का, लिंग भेद का मारा हुआ होगा, उसके मन में विरोध का भाव पैदा होगा। तो वह दूसरी परंपरा के साथ जुड़ेगा। नामवर जी ने खोजा जरूर द्विवेदी जी के बाद दूसरी परंपरा किंतु उसका वह विस्तार उन्होंने नहीं किया, क्योंकि द्विवेदी जी ने जो किया था, वह बुद्धों से लिया था।

दूसरी परंपरा में जैसा कि मैंने बताया उन्होंने बुद्ध से प्रेरणा ली थी, नाथों-सिद्धों ली थी। नामवर जी ने दूसरी परंपरा पर लिखने के बाद नाथों पर, सिद्धों पर कुछ भी नहीं लिखा। मेरा इस दूसरी परंपरा से जुड़ने के पीछे उद्देश्य उसकी लोकधर्मिता है। काशीनाथ सिंह के कथनानुसार, 'इस लोकधर्मी साहित्य से तात्पर्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह की परंपरा का विस्तार नहीं बल्कि वह उसकी अगली कड़ी है, जो आज के तमाम दलित प्रश्नों के साथ संवाद करती हुई दिखाई देती है।' इन तमाम प्रश्नों में दलित हैं, स्त्री हैं, पसमांदा विमर्श हैं, आम आदमी के जीवन का संघर्ष है, जो शोषित-पीड़ित रहे हैं उनसे जुड़ी जो परंपरा द्विवेदी जी में थी लेकिन नामवर जी में जिसका विस्तार नहीं मिलता उसी की आगे की कड़ी में मेरी प्रतिरोधी आलोचना को जोड़ा गया। हमारे जितने भी बड़े मार्क्सवादी आलोचक हैं वे दलित विमर्श के घोर विरोधी हैं। वे इसे खंडित मानते हैं। उनका कहना है इससे देश टूट जाएगा। वे आरक्षण विरोधी हैं।

मैंने द्विवेदी जी द्वारा स्थापित दूसरी परंपरा की अगली कड़ी को स्थापित किया है। इस अर्थ में मैं अन्य मार्क्सवादी आलोचकों से भिन्न हूं। मैंने हाशिये के समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर की है। प्रगतिशील जनवादी आलोचना में सैद्धांतिक रूप से इनके प्रति प्रतिबद्धता तो है लेकिन व्यावहारिक रूप से उनके प्रति कार्य करने की दृष्टि या सोच उनकी नहीं है। मैं मानता हूं कि हमारा जो हिंदी नवजागरण है उसमें इनके प्रश्नों को नहीं उठाया गया है। जबकि वहां पर इनका समावेश होना चाहिए। चाहे रामविलास शर्मा हों, चाहे नामवर सिंह हों, भारतीय नवजागरण में किसी ने भी अंबेडकर का नाम नहीं लिया, फूले का नाम नहीं लिया। जबकि भारतीय नवजागरण में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। प्रेमचंद नवजागरण में आते हैं लेकिन स्वामी अछूतानन्द का आंदोलन उनसे पहले यहां चल रहा था, उसका उल्लेख भारतीय नवजागरण में नहीं है। उसके बाद पेरियार ललई सिंह थे, रामस्वरूप वर्मा थे जो 60-70 के बाद भारतीय-जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। पेरियार ललई सिंह ने महत्त्वपूर्ण नाटक लिखा, *शोषितों पर धार्मिक डकैती* जैसे ग्रंथ दलितों के लिए लिखे हैं; लेकिन दलित प्रश्नों को उठाने वाले इन लेखकों का नाम भारतीय-नवजागरण

में कहीं नहीं लिया गया।

मैंने जिन दलित प्रश्नों को उठाया है उसके पीछे मेरा उद्देश्य आधे-अधूरे हिंदी नवजागरण को पूर्णता प्रदान करना है। इनकी उपेक्षा करके हम आगे नहीं बढ़ सकते हैं। ये कहना कि यह खंडित विमर्श है या ये स्त्री-लेखन या पुरुष-लेखन जैसा विभाजन क्यों? ये सब केवल विरोध के तरीके हैं। अगर हमारे साहित्यकारों ने स्त्री प्रश्नों को, उनकी पीड़ा को शिद्दत से महसूस किया होता तो उनको इसकी आवश्यकता ही क्यों पड़ती? वैसे ही दलित-लेखन को अलग से उठाने की क्या जरूरत थी? इसका तात्पर्य यह है कि मानवीय धरातल पर इन मुद्दों को न ठीक से महसूस किया गया, न उस पर अमल किया गया और उन सबके पीछे कारण केवल सवर्ण मनुवादी मानसिकता थी। दूसरी-परंपरा के रूप में साहित्य को मेरा यह अवदान मिला है।

पिछले दो-ढाई दशकों से ये कहा जा रहा है कि आजकल साहित्य के परिवेश को बहुत हद तक बाजार निर्धारित कर रहा है। इस पर आपके क्या विचार हैं?

जैसा कि मैंने पहले बताया था कि जो आर्थिक-विमर्श का दौर रहा है, वह बाज़ारवाद का ही दौर रहा है। बाज़ार और साहित्य में जो संबंध है उसमें एक तो बाज़ार साहित्य का विरोधी है और दूसरे साहित्य भी बाज़ार का विरोध करता है लेकिन जो समय का प्रभाव होता है वह साहित्य पर पड़ेगा ही। जो भूमंडलीकरण, उदारीकरण व निजीकरण का दौर रहा है उस दौर में हमारी पीढ़ी बराबर बाज़ार के पीछे भाग रही है और यह कार्य वह अपना कॅरियर बनाने के लिए भी कर रही है। शुरू में आदमी सोचता था कि बी.ए., एम.ए., पीएच.डी. आदि करेंगे और नौकरी करेंगे लेकिन नौकरियों के लिए बहुत अवकाश नहीं थे। नौकरियों के नाम पर केवल अध्यापक, विश्वविद्यालय में लेक्चरर, प्रोफेसर और कुछ अन्य क्षेत्रों में सरकारी नौकरियां थीं। लेकिन आज जो एक बदलाव दिखाई पड़ता है, वह यह है कि कॉरपोरेट या पूंजीवादी व्यवस्था ने अब नौकरियों के लिए अनेक द्वार खोल दिए हैं। निजीकरण व उदारीकरण के माध्यम से जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दौर आरंभ हुआ, उससे सांस्कृतिक रूप से भी बदलाव आया है। उस बदलाव की ओर युवा पीढ़ी भागी चली जा रही है और उधर जाने से उसको आप रोक नहीं सकते हैं।

ये जो बाजारवाद का दौर था उसने हमारे समाज को बहुत दुष्प्रभावित भी किया। उस दुष्प्रभाव को दूर करने के लिए किस तरह के बदलाव किए जाने चाहिए?

बाज़ार तो कबीर के समय में भी था और बाज़ार आज भी है। कबीर के समय में जो हाट-बाज़ार होता था, वह आम आदमी की आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए होता था। गांव में सप्ताह में एक दिन बाज़ार लगते थे। जिस साप्ताहिक बाज़ार कहते थे। एक गांव में सोमवार को लग रहा है, तो तीन-चार गांव बाद मंगलवार को लगेगा। किसी जगह बुधवार को लगेगा। इस तरह से आस-पास के दस-बारह गांव को मिला करके हफ्ते भर बाज़ार चलता रहता था। उसमें स्त्रियों के लिए, किसानों और मजदूरों के लिए, आम-आदमी के लिए चीजें होती थीं। ये लोग बाज़ार में जाकर आवश्यक आवश्यकताओं की चीजें खरीदते थे। यानी वह उनके लिए ही होता था और उनकी उसमें पहुंच भी थी।

आज जो बाज़ार विकसित हुआ है, यह उपभोक्ता केंन्द्रित बाज़ारवाद है। उपभोक्ता केंद्रित बाज़ार होने के नाते उसमें से जो उत्पादन श्रम से कटे हुए लोग हैं, जो उपभोक्ता संस्कृति जी रहे हैं, जिनके पास माल हैं, जिनकी जेब में पैसा है वे ही उसमें जा सकते हैं। आम आदमी का उसमें प्रवेश ही नहीं है। वह बाज़ारवाद 'मॉलकल्चर' के रूप में विकसित हुआ है, जो इस बाज़ारवाद का एक नया रूप है। सिनेमा से लेकर तमाम सारी चीजें उसमें शामिल हैं और उसमें यह देखने लायक है कि पूंजी अपनी ओर कैसे ग्राहकों व उपभोक्ताओं को आकर्षित करती है। सिनेमा पहले भी था। हम लोग जाते थे 10-15 रुपये का टिकट लेकर उसको देख लेते थे। लेकिन अब 'मॉल' में लोगों को खींच करके उन्हें हमेशा आकर्षित किया जा रहा है। जहां मॉल होता है, वहां बच्चों के लिए भी इस तरह के प्रोडक्ट रखे जाते हैं जिनसे वे आकर्षित हों। इसी का यह कारण है कि एक आलू में पूरे चिप्स का पैकेट भर करके बहुत ही कम लागत में आकर्षक पैकिंग के साथ उसे तैयार करके ये अंतर्राष्ट्रीय कंपनियां भारत के बाज़ार में अपने पैर तेजी से पसार रही हैं। इन्होंने भारतीय बच्चों को आकर्षक विज्ञापन और आकर्षक पैकिंग के माध्यम से पूरी तरह अपनी गिरफ्त में ले लिया है। इससे भारत के लघु उद्योगों को भारी क्षति पहुंची है। बाजार मुनाफ़ाखोरी के माध्यम से दो रुपये के आलू में बने हुए चिप्स को 15 या 20 रुपये में ये कंपनियां बेच रही हैं।

विज्ञापन के इस आकर्षण से हमें मुक्त होना होगा; क्योंकि बाज़ार विज्ञापनों से चल रहा है और विज्ञापन के केंद्र में स्त्री है, जिसमें स्त्री के शरीर का खुला इस्तेमाल हो रहा है। इसको रोकने की आवश्यकता है। इन विज्ञापनों में जिस प्रकार अर्द्धनग्न स्त्रियों को प्रस्तुत किया जा रहा है, उसका कोई औचित्य नहीं है, जैसे—लाल दंत

मंजन का विज्ञापन करती हुई, हाथों में लाल मंजन लिए हुए अर्द्धनग्न स्त्री जिस प्रकार से मंजन का प्रचार करती हुई दिखाई देती है, उसने अपने दैनंदिन जीवन में शायद ही कभी लाल दंत मंजन को हथेली पर रखा हो। उसके स्वरूप को देखकर तो लगता है कि यदि वह लाल दंत मंजन को अपनी हथेली पर रखे तो उसकी हथेली मैली हो जाएगी। उसी तरह टूथपेस्ट का विज्ञापन है। जिसमें बीसों तरह के टूथपेस्ट का प्रयोग करती हुई नारी दिखाई देती है। कोई दांतों में सफेदी लाएगी, कोई चमक लाएगा, कोई नमक से युक्त होगा, कोई मुख की दुर्गंध को दूर करेगा, कोई सेंसिटिविटी को दूर करेगा। इस प्रकार इस बाज़ार में अपने-अपने उत्पाद को बेचने के लिए अलग-अलग उत्पाद का अलग-अलग उत्पाद को बेचने के लिए अलग-अलग प्रचार विज्ञापनों में दिखाई देता है।

इसी प्रकार 'लक्स' साबुन का विज्ञापन है। रोज दिहाड़ी पर काम करने वाला मजदूर, चाहे वह किसी मिल में काम करता हो, चाहे कोयले की खदान में काम करता हो। उसने टी.वी. पर हमेशा हेमा मालिनी को लक्स साबुन का विज्ञापन करते हुए देखा है। उस बिना पढ़े-लिखे मजदूर को लक्स तो याद नहीं रहा, लेकिन हेमा मालिनी का वह दमकता हुआ चेहरा याद रहता है। दिनभर कोयले की खदान में काम करने के बाद जब वह शाम को घर पहुंचता है, तब अपने शरीर को साफ करने के लिए और विज्ञापन के उस हेमा मालिनी की तरह गोरा-चिट्टा बनने के लिए साबुन लेने बाज़ार में पहुंचता है और दुकानदार से साबुन मांगता है। दुकानदार के यह पूछने पर कि कौन सा साबुन चाहिए? मजदूर जवाब देता है कि वही वाला जो हेमा मालिनी लगाती है। इस प्रकार यह पूंजीवादी बाज़ार व विज्ञापनों के माध्यम से हमारे रसोईघर व बेडरूम तक पहुंचा हुआ है तथा इन विज्ञापनों व बाज़ार के माध्यम से हमारी पूंजी पूंजीपतियों के पास पहुंचती चली जा रही है।

इससे बच पाना आज के दौर में बड़ा कठिन लगता है; क्योंकि एक ओर हम यह चाह ही रहे हैं कि हमारे युवाओं को मल्टीनेशनल कंपनियों में अच्छे से अच्छे रोजगार मिले और उसकी चकाचौंध ने हमारी स्त्रियों, हमारी भारतीय मानवता को धीरे-धीरे हिलाकर रख दिया है। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने काम करते-करते ऊंचे पदों को प्राप्त कर हमारे देश के अपने युवा विदेशों में चले जाते हैं और वहीं बस जाते हैं। उनके बूढ़े माता-पिता भारत के अपने घरों में अकेले रह जाने को मजबूर हो जाते हैं और अकेल समस्याओं से जूझते तथा झूलते हुए एक दिन दुनिया से ही चल बसते हैं। इस पूंजीवादी-व्यवस्था और बाज़ार ने हमारी स्थानीयता और स्थानीय संस्कृति को

तहस-नहस कर डाला है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह मानवीय संवेदनाओं को खत्म कर देता है। बाज़ारवाद और पूंजीवाद के प्रभाव के कारण सारे रिश्ते पैसे से तय होने लगे हैं। बाप-बेटे का रिश्ता, भाई-बहन का रिश्ता, पति-पत्नी का रिश्ता इन सब में मानवीय संवेदनाएं धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही हैं और मानव 'यंत्र-मानव' या 'रोबोट' बनता जा रहा है।

आज के तकनीकी विकास व कंप्यूटर युग में क्या आपको नहीं लगता कि साहित्य के क्षेत्र में भी तकनीकी दखल बढ़ी है? साहित्य में इसके प्रभाव को आप किस रूप में देखते हैं?

तकनीकी दखल का प्रभाव जो आ रहा है, वह तो आएगा ही और वह हमारे साहित्य और सामाजिक जीवन दोनों को प्रभावित भी करेगा। हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी भी उससे प्रभावित होती रहेगी—तो ज़ाहिर है कि साहित्य भी उससे प्रभावित होगा। उसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू हैं, जैसे—मामूली सी बात है—मोबाइल का इस्तेमाल। अब आप देख लीजिए कि मोबाइल इस्तेमाल में दुनिया के देशों में भारत दूसरे स्थान पर है, कितना ज्यादा मोबाइल का इस्तेमाल हमारे देश में होता है। जो सूचना प्रौद्योगिकी है, वह हमारे देश के घर-घर में पहुंच रही है। घर-घर में क्या एक घर में जितने सदस्य हैं सबके पास मोबाइल है और कईयों के पास दो-दो मोबाइल हैं।

इस तेजी के साथ जिस टेक्नोलॉजी का विकास हो रहा है, क्या आप उसको रोक सकते हैं? तो इसका विकास होगा ही। इसने बड़ी सुविधाएं दी हैं। बैठे-बैठे अमेरिका और यहां-वहां बात कर लेते हैं। इसने पत्र लिखने की परंपरा को खत्म कर दिया है। यह एक दुष्प्रभाव है, क्योंकि जब हम लोग लिखते थे तो लिखते समय जो एक संवेदना होती थी, जो हमारे भाव होते थे, उस भाव से पत्र को पढ़ने वाला प्रभावित होता था। हमसे संवेदनात्मक रूप से जुड़ता था। वे सारी संवेदनाएं खत्म होती जा रही हैं। अब बड़े फॉर्मल ढंग से हम लोग बात कर लेते हैं। जैसा कि हमने कहा कि टेक्नोलॉजी या पूंजीवाद का जो विकास हो रहा है, ज़ाहिर है उससे हमारे मानवीय-संबंध सिकुड़ेंगे और अधिक यांत्रिक होंगे तथा बहुत कुछ फॉर्मल जैसे होते चले जाएंगे। इस तरह की चीजें आज लगातार बढ़ती चली जा रही हैं।

इसी प्रकार से साहित्य में जो भी टेक्नोलॉजी लायी जाएगी, उसका विकास होगा। साहित्य भी अब क्या है? आप पुस्तक लिखिए और इंटरनेट पर डाल दीजिए।

अब अमेरिका से किसी को पुस्तक खरीदनी है तो उसे बाजार में जा कर खरीदने की जरूरत नहीं है। इंटरनेट पर बुक स्टोर खोलिए, वहां से वह पुस्तक लोड हो जाएगी। अब तमाम पत्रिकाएं इंटरनेट पर चली गई हैं। उनको खरीद कर पढ़ने की क्या जरूरत है, इंटरनेट पर लोड कीजिए और पढ़ लीजिए। तो नई पुस्तक या पत्रिका से जो एक लगाव होता था कि हम पत्रिका खरीदते थे, उसे घर लाते थे, उसके बाद देखते थे, पढ़ते थे, और फिर टीका-टिप्पणी करते थे। वे सारी चीजें अब खत्म हो रही हैं। सुविधाएं बढ़ रही हैं, समय बहुत बच रहा है; लेकिन जो उसका नकारात्मक पहलू है, वह यह है कि जो उसके साथ हमारा जो एक जुड़ाव होता था, उसमें धीरे-धीरे कमी आने लगी है। जब हम नई किताब लाते थे तो उसके साथ हमारी एक संवेदना बनती थी। उस नई किताब में एक सुगंध होती थी। यह भाव होता था कि यह हमारी किताब है और इसमें हमारी बात छपी है। हम उसे बार-बार देखते थे और उसकी बात करते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि किताबों से जुड़ी अंतर्मन की जो भावना थी, जो एक भावनात्मक संबंध था, वह अब धीरे-धीरे खत्म होते जा रहा है। किंतु सब कुछ भले ही इंटरनेट पर हो जाए लेकिन शब्द का महत्त्व कभी खत्म नहीं होगा। शब्द है, वाक्य है, भाव हैं और इनमें जो अंतर्मन को प्रभावित करने वाले तथ्य व तत्व के रूप में विधाएं हैं—साहित्य व कविता—ये मानवीय संवेदनाओं को बढ़ाने वाली है।

अतः साहित्य खत्म हो जाएगा तो मानवीय संवेदनाएं खत्म हो जाएंगी। लेकिन ऐसा कभी होने वाला नहीं है। जब तक साहित्य रहेगा, कविताएं भी रहेंगी और हमारा सामाजिक जीवन भी एक प्रकार से विकसित होता रहेगा ।

क्या आप हाल के वर्षों की इन राजनीतिक प्रवृत्तियों को सकारात्मक मानते हैं?

हाल के वर्षों की ये प्रवृत्तियां जो हमारे समाज व राजनीति में दिखाई पड़ती हैं, उसका साहित्य में भी कोई न कोई प्रभाव अवश्य पड़ा है। जैसा मैंने कहा कि वह जो सामाजिक, आर्थिक व साहित्यिक प्रवृत्तियां या विमर्श उठ खड़े हो गए हैं, इसका मुख्य कारण हैं—सामाजिक-विषमता। सामाजिक-विषमता के खिलाफ जो सामाजिक-न्याय का आंदोलन है, वे सकारात्मक तो हैं ही, क्योंकि उनमें माना गया कि ये हाशिये के समाज की आवाज़ें हैं। इसके दो मूल कारण थे—कास्ट (जाति) और जेंडर (लिंग), जिनके आधार पर समाज में सारी विषमताएं पैदा की गई हैं। इस सामाजिक विषमता के मूल में यही दोनों—जाति-व्यवस्था व वर्ण-व्यवस्था हैं। एक जमाने से चली आ रही वर्ण-व्यवस्था आगे चलकर जाति-व्यवस्था के रूप में बदल गई जिससे

स्त्री व दलित सबसे ज्यादा प्रभावित हुए हैं। सामाजिक विषमता का सर्वाधिक प्रभाव इन्हीं के ऊपर पड़ा है। एक आदमी को एक आदमी से श्रेष्ठ बनाने के लिए, स्त्री पर पुरुष की श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए ही ये सारी विषमताएं गढ़ी गई हैं। नतीजा यह हुआ कि हजारों सालों से स्त्री पुरुषों की गुलाम है, उसे तमाम वर्जनाओं से घेरा गया है, यौन-शुचिता के नाम पर। सबसे बड़ी बात यह है कि पुरुष इससे मुक्त है, इस प्रकार बांधा गया है केवल स्त्री को।

उसी तरह दलित को भी जाति-व्यवस्था के नाम पर वर्ण में विभाजित करते हुए उसको एकदम अंतिम छोर पर रख दिया गया है। बाद में इस व्यवस्था में अस्पृश्यता का समावेश हो गया। एक मनुष्य होने पर भी समाज में घृणित है, जानवर से भी बदतर है वह। अंबेडकर को महाड़ का तालाब आंदोलन चलाना पड़ा। सियार हैं, कुत्ते हैं, बिल्ली हैं यह सब उसमें पानी पी सकते हैं, नहा-धो सकते हैं। लेकिन कोई दलित इसमें पानी नहीं पी सकता है। अस्पृश्यता के ये जो तमाम नारकीय जीवन दंश हैं, उनके खिलाफ वह आंदोलन एक अभियान था।

हमारे यहां जो प्रगतिशील व जनवादी आंदोलन था, वे लोग भी इस प्रश्न को उठाते थे। गांधी ने भी इस सवाल को उठाया था—अछूतोद्धार के माध्यम से। लेकिन यह अछूतोद्धार केवल भावनात्मक रूप से ही उनसे जुड़ा रहा। उनकी जो स्थितियां थीं, इनमें कोई परिवर्तन होने की बात नहीं आई है। हमारे कथा-साहित्य में प्रेमचंद ने भी इस सवाल को उठाया था और कायदे से कहें तो अंबेडकर के बाद अगर अस्पृश्यता के प्रश्न को किसी ने गहराई से उठाया, तो वे प्रेमचंद ही थे। गांधी और तिलक का जो अछूतोद्धार का आंदोलन था, वह एक प्रकार से अंबेडकर के आंदोलन को ध्वस्त करने के लिए था। इस काम को हम कर ही रहे हैं तो अलग से करने की क्या जरूरत है, यह उनका प्रयास था। लेकिन जो जातीय समस्या थी, मूल समस्या थी और उसको अंबेडकर ने ही उठाया था। वे सामाजिक आर्थिक आज़ादी की दूसरी लड़ाई लड़ रहे थे। गांधी, नेहरू, तिलक की लड़ाई राजनीतिक आंदोलन की लड़ाई थी। राजनीतिक रूप से देश आज़ाद हो जाए, सत्ता अंग्रेजों के हाथ से हमारे हाथ में आ जाए, साम्राज्यवाद खत्म हो जाए आदि। अंबेडकर गहरी लड़ाई लड़ रहे थे, जिसमें फूले उनके साथ थे। वे चाहते थे कि साम्राज्यवाद के साथ-साथ सामंतवाद की आंतरिक गुलामी से मुक्त होना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। जब तिलक ने कहा कि 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' तो अंबेडकर का कहना था कि 'क्या आपने कभी यह भी सोचा कि हजारों साल से सवर्णों की गुलामी से मुक्त होना

दलितों का जन्मसिद्ध अधिकार है?' इस प्रकार दलितों की गुलामी साम्राज्यवाद से नहीं थी। दलितों की गुलामी या स्त्रियों की गुलामी सामंतवाद के कारण थी; जिसका आधार जाति-व्यवस्था है, वर्ण-व्यवस्था है, लिंग-भेद है। इस वर्ण-भेद और लिंग-भेद के आधार पर जो सामाजिक-विषमता सामंती-समाज द्वारा पैदा की गई है, वह खत्म होने वाली नहीं थी। साम्राज्यवाद के समाप्त होने के बाद जिनके हाथ में सत्ता जा रही थी, वे सामंती ताकतें ही हैं। इसलिए एक आज़ाद भारत में दलितों के लिए क्या अवकाश होगा, स्त्रियों के लिए क्या अवकाश होगा, यह सवाल अंबेडकर ने उठाया था। तो ये मूलभूत तथ्य थे और ये तथ्य बड़े ही सकारात्मक हैं, जो आज के आंदोलन को दिशा देते हैं।

ऐसा माना जाता है कि आप भक्तिकालीन कवि तुलसी के समानांतर जैसे कबीर को स्थापित करके समानांतर प्रतिरोधी परंपरा के स्थापन कार्य में लगे हों। क्या इस कथन में सच्चाई है?

ये कबीर और तुलसी का मामला नहीं है। ये उस पूरी सामाजिक परंपरा में—एक वैदिक-पौराणिक परंपरा वर्चस्व वाली सत्ता की परंपरा और दूसरी उसके प्रतिरोध की परंपरा है। यह जो प्रतिरोध की परंपरा है—इसकी दृष्टि मुझे हजारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक पढ़ने के बाद या हजारीप्रसाद द्विवेदी पर किताब लिखने के बाद उन्हीं से प्राप्त हुई, इसी के अगले विकास के रूप में; क्योंकि भक्तिकाल मेरे अध्ययन का मुख्य केंद्र रहा है, इसलिए भक्तिकाल को पढ़ते समय यह दृष्टि मुझे वहीं से प्राप्त हुई है। इस दृष्टि से अगर देखा जाए तो भक्तिकाल में तुलसी और कबीर इसके दो सिंबल मिलते हैं। यह सिंबल शंकराचार्य तक जाता है। शंकराचार्य और कुमारिल जिन्होंने बौद्ध दर्शन को निरस्त करके आत्मसात कर लिया है। ऐसा कहा जाता है इसका मतलब है कि बुद्ध के चिंतन की जो धार थी, जो उसका प्रतिरोध का तेवर था, उसको कुंद बनाकर शंकर और कुमारिल ने वेदांत में उसे आत्मसात कर लिया।

ठीक ऐसी स्थिति बनती है कि तुलसीदास, सिद्धों, नाथों और कबीर की निर्गुण धारा की जो क्रांतिकारी चेतना है, जो ब्राह्मणवाद विरोधी चेतना है, जाति विरोधी चेतना है उसकी धार को कुंद बनाकर रामचरितमानस में आत्मसात कर लिया। तुलसी ने यह पूरा हथकंडा उसी तरह अपनाया जैसे वहां शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट ने अपनाया था। तो सिंबल तुलसी और कबीर से नहीं है; बल्कि यह सिम्बल पूरी परंपरा से है। यह दूसरी परंपरा जो प्रतिरोध की परंपरा है उसको पढ़ने के बाद, उसके

इतिहास बोध से मुझे यह मिला है। इसलिए केवल कबीर और तुलसी सामने नहीं आते बल्कि उसके पीछे पूरा इतिहासबोध है। जो पूरी सांस्कृतिक परंपरा है उस की कड़ी में तुलसी के मानस में वैदिक-पौराणिक परंपरा की कड़ी का विकास दिखाई पड़ता है और कबीर, रैदास में बुद्ध की परंपरा का विकास दिखाई पड़ता है जो कि ब्राह्मणवाद- विरोधी परंपरा है। इसलिए तुलसी और कबीर बनेंगे तो शंकराचार्य और बुद्ध खड़े मिलेंगे। यहीं से दलित-आंदोलन का विकास मिलेगा, स्त्रीवादी-आंदोलन का विकास होगा। मैंने दलित-आंदोलन और स्त्री-आंदोलन को उस भक्ति-आंदोलन से जोड़ दिया है, जो हमारा अस्मिता का आंदोलन है दलितवादी-आंदोलन व नारीवादी-आंदोलन। हमने उसका विलय करके भक्ति-आंदोलन से दोनों को रेखांकित किया है। जबकि पूरी मार्क्सवादी आलोचना दलित-आंदोलन का विरोध करती है लेकिन मैं उसको पूरे एक ऐतिहासिक विलय के रूप में देखता हूं। इसलिए वह सराहा जा रहा है।

(गुरूजी आपने विविध विषयों से जुड़ी मेरी जिज्ञासाओं व प्रश्नों का जो समुचित समाधन प्रस्तुत करने के साथ अपनी आलोचना-दृष्टि के मूल-कारकों की ओर संकेत किया है उससे निश्चित रूप से आप पर शोध करने वाले विद्यार्थियों के लिए ही नहीं अपितु मुझ जैसे शोध-निर्देशकों के लिए भी प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है। मेरा विश्वास है कि साहित्य-जगत आपकी इस तार्किक एवं वैचारिक दृष्टि से अवश्य समृद्ध होगा। अपना अमूल्य समय साक्षात्कार हेतु देने के लिए मैं आपके प्रति हृदय से श्रद्धावनत हूं और कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं। आपके दीर्घायुष्य की मंगलकामना के साथ आपके अक्षय आशीष की आकांक्षिणी हूं।)

धन्यवाद !

(फरवरी, 2018)

कोरोना की पीर

डॉ.आशा यादव

Scanned with OKEN Scanner

कोरोना की पीर

आशा यादव

असोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

वसन्त कन्या पी जी कॉलेज कमच्छा

बी.एच.यू.वाराणसी।

पी. आर. सी. पब्लिकेशन

Scanned with OKEN Scanner

प्रथम संस्करण : २०२०
ISBN 978-93-87048-15-7

© प्रकाशक

Email prcbsbi@gmail.com

Website www.philosophical researchcouncil.com

मूल्य -₹ २५०

प्रकाशक : मुद्रक
पी. आर. सी. पब्लिकेशन
लखनपुर भुल्लनपुर
वाराणसी २२११०८

Scanned with OKEN Scanner

अनुक्रम

	प्राक्कथन	९
१	विपरीत धारा जीवन की	११
२	स्वहृद् का बढ़ता आकार	१३
३	आँधी का दबे पाँव आना	१५
४	धारा सुखद परिवर्तन की	१७
५	सोच सकारात्मक	१९
६	पथ का साथी	२१
७	छलावा सरकार का	२३
८	साथी हाथ बढ़ाना	२४
९	रंगीनियाँ सूनी डायरियों की	२६
१०	विद्रोही चीख	२८
११	सीखों की पुड़िया	३०
१२	अँधेरे से उजाले की ओर	३२
१३	निरुपाय संवेदना	३४
१४	लौटा दो चेतना माँ भारती की	३६
१५	सतयुग की कामना कलियुग में	३८
१६	अवलेप नेह का	४०
१७	ख़तरा अस्मिता का	४२
१८	आभ्यन्तर की यात्रा	४४
१९	युद्ध बनाम शान्ति	४६
२०	परख सत्य की	४८

Scanned with OKEN Scanner

२१	समरसता के बीज	५०
२२	ज़िन्दादिली बनारस की	५२
२३	बुज़ुर्गों का दर्द	५४
२४	दस्तक देती मनुजता कोरोना के बहाने	५६
२५	जिजीविषा	५९
२६	दुर्दान्त दंश भारत की रीढ़ का	६१
२७	चकनाचूर सपने प्रवासी मजदूरों के	६४

Scanned with OKEN Scanner

कवयित्री के विषय में

डॉ. आशा यादव एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वसन्त कन्या पी.जी. कॉलेज,कमच्छा, वाराणसी

जन्म : 13 अप्रैल, सन् 1964, वाराणसी

शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी(1986), पी.एच.डी.काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी(1992)

अध्यापन–अनुभव : 1987 से अद्यतन

प्रकाशन

प्रकाशित पुस्तकें:

1. जीवन बिन्दु(काव्य–संग्रह)
2. भारतीय स्त्री : दशा और दिशा
3. कबीर चिन्तन के विविध आयाम
4. जीवन के रंग अनेक

सम्पादन

1. महिला पंचायत(राष्ट्रीय हिन्दी मासिक पत्रिका)
2. सर्जना(काव्य–संग्रह)हस्तलिखित पत्रिका
3. प्रसाद महादेवी:संदर्भ और दृष्टि
4. पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि एवं सृष्टि
5. संसिद्धि:महामनीषी प्रो.सिद्धेश्वर भट्टाचार्य एवं शास्त्र परम्परा
6. रामचरित मानस में अभिव्यक्त लोक संस्कृति (प्रकाशनाधीन)
7. परख (प्रकाशनाधीन)

साक्षात्कार

1. प्रोफेसर चौथीराम यादव: प्रतिरोधी परम्परा के आलोचक,पसमांदा विमर्श के जनक,स्त्री व दलित विमर्श के शलाका पुरुष के साथ डॉ० आशा यादव की वार्ता।
2. विदुषी, लेखिका, कवयित्री डॉ०कमला पाण्डेय जी के साथ डॉ० आशा यादव की वार्ता

पुस्तक समीक्षा

1. रक्षत गंगाम् महाकाव्य.डॉक्टर कमला पाण्डेय
2. आस्था के पल काव्य संग्रह.डॉक्टर अवधेश मिश्रा

रेखाचित्र लेखन

1. झूरी : अनन्त पथ की ओर
2. मेरी स्मृतियों में प्रो०वासुदेव सिंह
3. प्रो०चौथीराम यादव : जैसा मैंनें जाना

पदक व सम्मान.

1.भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा लेखन हेतु पदक प्राप्त।
2.अखिल भारतीय गोकुल आर्ट्स नाट्य संस्थान द्वारा पुरस्कृत
3.शिक्षा रत्न अवार्ड (IIFS द्वारा प्रस्तावित)
4.भारत ज्योति अवार्ड(IIFS द्वारा प्रस्तावित
5. महिला विदुषी सम्मान–नव सृजन दृष्टि महिला मंच द्वारा प्रदत्त
6.काशी धाम हमारी विरासत द्वारा विशिष्ट साहित्यिक सम्मान से सम्मानित

भूमिका लेखन–

1.तीरगी की खाट पर (कविता संग्रह) .–प्रणव मिश्र तेजस

सम्पर्क : B 20/44 A D3 Fourth Floor , Vijaya Complex, Bhelupur, Varanasi—221010

Scanned with OKEN Scanner

प्राक्कथन

आज जब पूरा विश्व कोरोना के कहर से कराह रहा है,वैश्विक क्षितिज पर इस महामारी के भयावह संक्रमण और विस्तार ने पूरी धरती को जैसे झकझोर कर रख दिया है,इसके भयंकर प्रकोप से जूझते विश्व के अनेक विकसित व विकासशील देश इससे सुरक्षित होने के उपायों की खोज और वैक्सीन की शोध में बड़ी तत्परता से संलग्न हैं--तब इस भीषण आपदा को अवसर में तब्दील करने की बलवती इच्छा ने मुझे इस नवसृजन की ओर प्रेरित किया। २२ मार्च, २०१९ को लगे जनता कर्फ्यू एवं 24 मार्च 2019 से माननीय प्रधानमंत्री के आदेश से हुए लॉकडाउन के आरंभ के साथ मेरी कलम उठी और लॉकडाउन की समाप्ति तक हर दिन एक नयी कविता के सृजन के साथ यह काव्य-लेखन-यात्रा अनवरत गतिमान होती रही,बिना रुके-बिना झुके। मेरी इन कविताओं की बनावट और बुनावट में अपनी महती भूमिका निभायी थी--कोरोना महामारी से उपजी दैनन्दिन कठिन से कठिनतर होती विकट अवांछित परिस्थितियों ने, बुजुर्गों की पीड़ा और वेदना ने,परिवार-समाज-प्रदेश-देश की अभावग्रस्तता ने,दिहाड़ी मजदूरों की बदहाली ने और विश्व की तमाम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिदृश्यों और गतिविधियों की पल-पल बदलती तस्वीरों के बदरंग होते रूपों और मिज़ाजों ने,लोगों के मन,विचार,सोच और चिन्तन ने तथा रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में होने वाले छोटे से छोटे अयाचित बदलावों ने-- जिनके मद्देनजर अभिव्यक्ति का शुरू हो चुका यह सिलसिला निर्बाध-निरवरोध चलता रहा,चलता ही रहा।इस भयंकर व विकराल काल ने हमें बाहरी दुनियाँ से तो दूर किया ही था,साथ ही अनेक प्रकार की अघोषित व असह्य आशंकाएँ,पीड़ाएँ और तनाव भी कोरोना की पीर बन हमारे हृदय में शूल की तरह चुभते चले गए।

इस कोरोना काल के संकट से उपजे भीषण तनाव से दूरी बनाए रखने में मेरी ये कविताएँ एक मजबूत अवलम्ब की भूमिका में, सच्चे सहयात्री की तरह हमेशा मेरे साथ कदम से कदम मिलाकर चलती रहीं।वैसे तो समय चाहे सुख का हो या

Scanned with OKEN Scanner

दुख का, कविताएँ हमेशा से ही हमारे जीवन का महत्वपूर्ण पूरक रही हैं;क्योंकि कविता में भाव है, प्रेम है, त्याग है,समर्पण है,आध्यात्मिकता है,लय है और तो और संगीत भी है ;जिसके कारण कविता लिखते और पढ़ते समय हमें बराबर यह महसूस होता रहता है कि जैसे हम कोई आराधना या पूजा कर रहे हों। मन और शरीर दोनों ही आराधन-भाव से उसमें लीन हो सुकून,शान्ति और आह्लाद का अनुभव करते हैं।यही सुकून,शान्ति और आह्लाद ही सहृदय लेखक,पाठक और श्रोता के मन तथा शरीर पर भी अनुकूल,सकारात्मक एवं औषधिक प्रभाव अवश्य डालते हैं।

यही कारण था कि मैंने इस महामारी के कारण उपस्थित भीषण-काल की चुनौती को सानुकूल बनाते हुए कविता की अन्तर्निहित शक्तियों,अध्यात्मिक भावों, ध्यान, आराधना,संगीत और सकारात्मक चिन्तन के माध्यम से इस कोरोना जैसी महामारी के भीषणतम प्रभावों के बीच भी संयम,शान्ति, आत्मचिंतन,प्राकृतिक सुपरिवेश-परिदर्शन और पर्यावरण सौंदर्य-दर्शन की सुखद भावभूमि की ओर इसके माध्यम से मैंने सभी का ध्यान आकृष्ट किया।

मेरे इस लघु आयास को अविलंब मुद्रित कर काव्यसंग्रह रूप में प्रकाशित करने में महती भूमिका का सस्नेह निर्वाह करने हेतु मैं लोकनाथ पब्लिकेशन्स के निदेशक व अति स्नेही अनुज डॉ.आशीष पाण्डेय जी के प्रति हृदय से श्रद्धावनत हूँ।मेरी यह पुस्तक "कोरोना की पीर"आपके आशु सद्प्रयासों का ही प्रतिफल है। ईश्वर आपको अनवरत ऐसे ही पुनीत कार्यों में संलग्न रखें आपके लिये यही शुभकामना है।

मेरे सभी आत्मीय जन,विदुषी सखियों-

प्रो.सविता भारद्वाज और डॉ.मीनू पाठक तथा मेरे परिवार के सभी अभिन्न वरिष्ठ-कनिष्ठ सदस्यों का नि:स्वार्थ और अपरिमित सहयोग तथा शुभस्करी एषणाएँ ही इस काव्यसंग्रह की पूर्णता में नींव-प्रस्तर की भाँति अडिगता से संगुम्फित हैं।आपसभी स्वजन और सुधीजन के प्रति उरतल से आभार और प्रणति।

मेरी यह कृति आपसभी सहृदय पाठकों के लिये सस्नेह समर्पित है।

आशा यादव

Scanned with OKEN Scanner

प्रो० वासुदेव सिंह स्मृति-ग्रन्थ

फूल मरै पै मरै न बासू

श्री वासुदेवसिंहाय सारस्वतसुगन्धकः।
विदुषे कीर्ति शेषाय दीयते सुमनोऽञ्जलिः।।
तस्य पुण्यतिथौ काश्यां स्मारिकेयं प्रकाशिता।
सत्सङ्कल्पमनःसूता हेतुभूता चिरस्मृते ।।

—प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी

आविर्भाव : १० अक्टूबर, १९३३ तिरोधान : २७ जनवरी, २००७

Scanned with OKEN Scanner

प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति-ग्रन्थ

फूल मरै पै मरै न बासू

प्रधान *संरक्षक*

सुधांशु शेखर सिंह

सम्पादक

प्रो. श्रद्धा सिंह

डॉ. हिमांशु शेखर सिंह

प्रकाशक

प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास (पंजीकृत)

प्रेम सदन, सी ३३/१४७-३२ ए, आचार्य नरेन्द्रदेव नगर

चन्दुआ छित्तूपुर, वाराणसी-२२१००२, उत्तर प्रदेश

संवाद-सेतु : ९४१५९८४९८३, ९४१५५३०५८७, ८४१८०७८१२३, ८८०८५५८१२३

ई-मेल : *himanshusinghkvp@gmail.com / shraddhahindi@gmail.com*

फेसबुक : *Prof Vasudev Singh Smriti Nyas*

Scanned with OKEN Scanner

प्रथम संस्करण :
श्रावण पूर्णिमा, सन् २०२२ ई.

ISBN : 978-81-89463-58-8

मूल्य : ८००.००

© प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास, वाराणसी

प्रकाशक :
प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास, वाराणसी

वितरक :
(i) कला मन्दिर
१६८७, नई सड़क, दिल्ली-११०००६
(ii) संजय बुक सेण्टर
के. ३८/६, गोलघर, वाराणसी-२२१००१

शब्द-संयोजक :
श्री विमल चन्द्र मिश्र
पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१०

मुद्रक :
श्री सरल पाण्डेय
डॉट क्रियेशन, रामबाग, प्रयागराज

Scanned with OKEN Scanner

५५. गुरुवर को शत्-शत् नमन – डॉ. मुनीन्द्र तिवारी ११२
५६. श्रद्धेय गुरु जी – डॉ. रामेश्वर दत्त शुक्ल ११४
५७. सद्गुरु के सदके करूँ... – प्रो. अवधेश सिंह ११५
५८. तेरी सीरति हाट बिकइहैं – प्रो. शिवकुमार मिश्र ११६
५९. संकल्प-शक्ति के धनी – आ. नरेन्द्र कुमार सिंह ११७
६०. तत्त्वाभिनिवेशी समीक्षक – डॉ. जितेन्द्रनाथ मिश्र १२०
६१. सौम्य व्यक्तित्व के धनी – डॉ. जगदीश सिंह 'दीक्षित' १२२
६२. अक्षुण्ण स्मृतियाँ – डॉ. भारती सिंह १२३
६३. काशी की ज्ञान-परम्परा और प्रो. वासुदेव सिंह – प्रो. विनोद कुमार मिश्र १२५
६४. स्मृति के वातायन से – डॉ. मधु सिंह १३०
६५. मेरी स्मृतियों में प्रो. वासुदेव सिंह – डॉ. (श्रीमती) आशा यादव १३३
६६. अरे! तुम इतनी बड़ी हो गयीं – डॉ. सविता भारद्वाज १३५
६७. स्मृतियों के वातायन से – प्रो. अंशुमान खन्ना १३६
६८. स्मरण करते हुए – प्रो. अनुराग कुमार १३७
६९. कर्म का अभ्यास – डॉ. रामाश्रय सिंह १३८
७०. प्रो. वासुदेव सिंह : मूल्यांकन और मूल्यांकन – डॉ. शशांक शुक्ल १४०
७१. परमात्म ज्ञानी गुरु जी – डॉ. राधेश्याम शर्मा १४२
७२. स्मृति के शब्द-सुमन : गुरुदेव को करते नमन – डॉ. आशुतोष कुमार तिवारी १४४
७३. संकल्प का कोई विकल्प नहीं – डॉ. रमाकान्त मिश्र १४६
७४. हिन्दी-जगत् के तेज-निर्माण की बेदी ठण्डी पड़ गयी – डॉ. सीता सिंह १४८

पंचम सोपान : समीक्षा

७५. हिन्दी-शोध के प्रतिमान : प्रो. वासुदेव सिंह – प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी १५३
७६. प्रो. वासुदेव सिंह की शोध-कृति अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद – डॉ. अवधेश सिंह १५८
७७. हिन्दी साहित्य का उद्भव काल : एक विवेचन – प्रो. युगेश्वर १६१
७८. हिन्दी साहित्य का आदिकाल : प्रो. वासुदेव सिंह की दृष्टि – डॉ. विनोद कुमार सिंह १६३
७९. प्रो. वासुदेव सिंह का हिन्दी साहित्येतिहास लेखन : दृष्टि और सम्भावनाएँ – प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा १६७
८०. साहित्येतिहास की सम्यक् दृष्टि – डॉ. रामसुधार सिंह १७१
८१. प्रो. वासुदेव सिंह की साहित्येतिहास-दृष्टि – डॉ. श्रद्धा सिंह १७३
८२. प्रो. वासुदेव सिंह की इतिहास-दृष्टि – डॉ. रमाकान्त मिश्र १७८
८३. डॉ. वासुदेव सिंह कृत 'हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास' – डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि' १८०

Scanned with OKEN Scanner

मेरी स्मृतियों में प्रो. वासुदेव सिंह

*डॉ. (श्रीमती) आशा यादव**

प्रो. वासुदेव सिंह (चाचा जी) जब-जब मेरी स्मृतियों में आते हैं, उनका एक ही चित्र मेरे मानस-पटल पर अंकित हो जाता है। हिमाच्छादित पर्वतों की गर्वीली चोटियों से समता करता हुआ, सीधा तना हुआ, ऊँचा-सा देवदारु का वृक्ष, जिसका समुन्नत ललाट शीत-आतप-वर्षा के प्रहार झेलता था, जिसकी अत्यन्त विस्तृत शाखाओं को बवंडर और तूफान झकझोरते रहते थे, जिसकी जड़ों से एक सरस जलधारा आँख-मिचौनी खेलती थी, जिसका मस्तक ठिठुरा देने वाले हिमपात, प्रचण्ड धूप एवं मूसलाधार बारिश के बीच भी गर्व से उन्नत रहा। बर्फीली हवाओं के तीक्ष्ण प्रतिकूल झकोरे झेलने के बाद भी वह निश्चल खड़ा रहा।

सभी प्रतिभाशाली लोगों का जीवन संघर्षमय रहता है, परन्तु उन संघर्षों के बीच से ही सृजन के नये-नये आयाम खुलते चले जाते हैं। साहित्य-सृजन व शिक्षण का कार्य भी ऐसी छोटी बाधाओं का सम्मिलित परिणाम होता है। चाचा जी भी इसके अपवाद नहीं थे।

चाचा जी के सान्निध्य का सुख जिन्हें भी प्राप्त हुआ होगा, वे आजीवन उन्हें भूल नहीं सकते। अगाध ज्ञान, अकृत्रिम सहृदयता, उच्च चरित्र और अजस्र स्नेह का बड़ा सुन्दर समन्वय उनके व्यक्तित्व में था, जो अन्यत्र दुर्लभ है। लम्बा कद, समुन्नत ललाट, लम्बी भुजाएँ, पैण्ट-बुशर्ट व काला जूता पहने वे विद्यापीठ के हिन्दी विभाग में शिक्षकों की मण्डली के बीच में बैठे रहते थे। ज्ञान अपार था, किन्तु उसके प्रदर्शन की कभी व्याकुलता नहीं थी। कोई भी छात्र उनके पास शोध-कार्य के लिये या किसी जिज्ञासा की शान्ति के लिए अगर आया, तो उसे ऐसा अपनाया कि अपना होकर रह गया। मैंने भी विद्यापीठ से ही हिन्दी में स्नातकोत्तर की शिक्षा ली। हम लोगों को वे हिन्दी साहित्य का इतिहास पढ़ाते थे। हमारा पूरा पाठ्यक्रम उनके जिह्वाग्र पर था। वे कभी भी कक्षा में कोई पुस्तक या कागज लेकर नहीं आते थे। कक्षा ४५ मिनट की हो या ९० मिनट की– धाराप्रवाह बोलते रहते थे। हम लोग उनका लेक्चर यथासम्भव नोट कर लिया करते थे। डरते हुए बीच में एकाध बार बोलने की गति धीमी करने के लिये भी कह दिया करते थे। वे बहुत ही कुशल अध्यापक थे। उनका पढ़ाया हुआ इतिहास आज भी मस्तिष्क में तरोताजा है।

वे समय के बड़े पाबन्द थे। कक्षा में कभी भी विलम्ब से नहीं आते थे। निश्चित समय पर कक्षा में आना व समय पर कक्षा छोड़ना उनकी आदत थी। अपने पाठ्यक्रम से सम्बन्धित कोई भी समस्या हम लोग उनके पास लेकर जाते थे, तो वे हमें पूरा समय देते थे व हमारी समस्या का निराकरण भी तुरन्त करते थे। पढ़ने के लिये अनेक बार उनसे पुस्तकें हम लोग लेते थे। हर बार वे जल्दी लौटा देने की शर्त पर पुस्तकें

* अध्यक्ष– हिन्दी विभाग, बसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

देते थे। मेरा यह सौभाग्य था कि मुझे उनकी शिष्या होने का गौरव भी मिला एवं उनकी आत्मजा श्रद्धा से मित्रता होने के कारण उनका पितृतुल्य स्नेह भी मुझे प्राप्त हुआ।

वे बड़े ही अनुशासनप्रिय थे। उनकी अनुशासनप्रियता से हम लोग एम.ए. की पढ़ाई के दौरान बराबर इस अर्थ में लाभान्वित होते रहे कि हिन्दी विभाग के सभी छात्र हम लोगों के पूरे ग्रुप के साथ बड़ी भद्रता से पेश आते थे, क्योंकि उन्हें हमेशा इस बात का भय रहता था कि किसी भी प्रकार की शरारत करने पर सूचना सर तक पहुँच जाएगी।

अतिथि-सत्कार का सद्भाव भी उनके भीतर था। १९८५-८६ में जब हम लोग एम.ए. कर रहे थे, विद्यापीठ परिसर में ही उनका आवास था। मैं और श्रद्धा साथ-साथ कक्षाएँ करने जाया करते थे। अक्सर जब मैं उनके आवास पर जाती, तो उस समय गोरखपुर वाले डॉ. भगवती प्रसाद सिंह जी को अनवरत लम्बी अवधि तक उनके यहाँ रहकर लेखन-कार्य करते हुए देखती। उनके यहाँ साहित्यकारों का आवागमन तो होता ही रहता था, उनके शोध-छात्र भी बड़ी आत्मीयता से उनके यहाँ आते थे, पढ़ते रहते थे, जैसे लगता था कि वे भी उनके परिवार के अंग हों। नरेन्द्र भैया और शिव कुमार मिश्र जी को मैं उनके यहाँ अक्सर पढ़ते हुए देखा करती थी। जब कभी दोपहर वाली कक्षा होती थी और मैं श्रद्धा को लेने उनके यहाँ पहुँचती, उस समय यदि चाचा जी भोजन कर रहे होते, तो कुम्मी (श्रद्धा) से मुझे भी भोजन कराने के लिये अवश्य कहते थे। मैंने कई बार उनके यहाँ चाची जी के हाथ की बनी सुस्वाद रसोई का जायका लिया था। खड़ी लाल मिर्च व देशी घी के बघार वाली दाल मुझे आज भी याद है। चाची जी को बागवानी का बड़ा शौक था। उनके किचेन गार्डेन की मूली, उनके पेड़ के अमरूद मुझे आज भी याद आते हैं।

किन्तु; नियति का खेल ही विचित्र है। आज न चाचा जी रहे, न विद्यापीठ वाला उनका आवास। आज भी उनके वर्तमान आवास पर मैं जब भी जाती हूँ, मेरी आँखें उनको ढूँढ़ती हैं। अतीत के वे स्वर्णिम दिन याद आते हैं। चाची जी में ही उनका प्रतिबिम्ब देख लेती हूँ। क्या किया जाय? यही जीवनक्रम है। यही सत्य है। यही होता है। यही होता आया है।

●

Scanned with OKEN Scanner